STAGING OF SHAKESPEARE IN POST-INDEPENDENCE INDIA: EBRAHIM ALKAZI AND UTPAL DUTT IN CONTEXT

स्वातंत्र्योत्तर भारत में शेक्सपीयर के नाटकों का मंचन : उत्पल दत्त और इब्राहीम अल्काजी के संदर्भ में

एम. फिल. कला एवं सौंदर्यशास्त्र की उपाधि के लिए प्रस्तुत लघु शोध प्रबंध

शोध-निर्देशक

प्रो एच एस शिवप्रकाश

शोधार्थी

रमेन्द्र कुमार चक्रवर्ती

कला एवं सौंदर्यशास्त्र संस्थान

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय

नयी दिल्ली-110067

भारत

2009

School of Arts & Aesthetics
JAWAHARLAL NEHRU UNIVERSITY
New Delhi - 110067, India

Telephone: 26742976, 26704177
Telefax : 91-11-26742976
E-mail : aesthete@mail.jnu.ac.in

CERTIFICATE

This is to certify that the dissertation titled **"Staging of Shakespeare in Post-Independence India: Alkazi and Utpal Dutt in Context"** submitted by **Ramendra Kumar Chakarwarti** at the School of Arts & Aesthetics, JNU, New Delhi, for the award of the degree of **Master of Philosophy** in **Theatre and Performance Studies**. This is his own work and has not been submitted so far, in part or in full, for any other degree or diploma of this or any other University or Institution.

We recommend that this dissertation be placed before the examiners for evaluation.

Dean

Prof. H. S. Shiva Prakash
Dean
School of Arts & Aesthetics
Jawaharlal Nehru University
New Delhi - 110067

Supervisor

Prof. H. S. Shiva Prakash
Dean
School of Arts & Aesthetics
Jawaharlal Nehru University
New Delhi - 110067

Date : 29.07.2009

DECLARATION

I declare, that the work done in this dissertation entitled 'STAGING OF SHAKESPEARE IN POST- INDEPENDENCE INDIA: EBRAHIM ALKAZI AND UTPAL DUTT IN CONTEXT' by me is an original work and has not been previously submitted for any other degree in this or any other university/institution.

Ramendra kumar chakarwarti

(Research Scholar)

परमपूज्य माँ एवं बाबूजी को सादर समर्पित

आभार

यह लघु शोध प्रबंध 'स्वातंत्र्योत्तर भारत में शेक्सपीयर के नाटकों का मंचन : उत्पल दत्त और इब्राहीम अल्काजी के संदर्भ में' के अध्ययन का एक छोटा-सा प्रयास है. मेरी अनुसंधान प्रक्रिया में मुझे कई अकादेमिक और व्यक्तिगत समस्याओं का सामना करना पड़ा. मैं अपने शोध निर्देशक प्रो. एच. एस. शिवप्रकाश का कृतज्ञ हूं. भारतीय समाज एवं संस्कृति के बारे में उनकी गंभीर सोच एवं हाशिये के समाज के विविध आयामों पर विभिन्न दृष्टिकोण सदैव मेरे लिए प्रेरणाप्रद रहे, जिन्होंने न सिर्फ़ अनुसंधान कार्य में सुझाव, टिप्पणी आदि से मदद की, बल्कि उनके मित्रवत व्यवहार एवं समय-समय पर दिये गये मार्गदर्शन और आशीर्वाद से ही यह शोध कार्य संपन्न हो पाया. मैं डॉ विष्णु प्रिया दत्त का ऋणी हूं, जिन्होंने शोधकार्य के दौरान अपने अमूल्य परामर्श से मेरी अनेक शंकाओं का निराकरण किया एवं अनुसंधान कार्य में पूर्ण सहयोग दिया, बल्कि उन्होंने मुझे वात्सल्य मिश्रित स्नेह भी दिया. साथ-ही-साथ कला एवं सौंदर्यशास्त्र के शिक्षकगण, जिनमें डॉ उर्मिमाला सरकार एवं साथी शिक्षक डॉ सौम्यव्रत चौधरी एवं सहपाठी ब्रह्म प्रकाश का समय-समय पर मार्गदर्शन एवं उत्साहवर्धन के लिए भी आभारी हूं. साथ ही, जगदीश जी एवं दीवान राम जी का आभारी हूं, जिन्होंने सदैव कार्यालय संबंधी कार्यों में मेरी मदद की.

विश्वविद्यालय के अपने मित्रों रेयाज़, शर्मिष्ठा मल्लिक, रूबीना, पवन कुमार, धर्म प्रकाश, अवधेश, शिवशंकर, जोगिंदर मीणा, नूतन मीणा, पुष्पेंद्र,

धीरज राठौड़, ललित मीणा, अशोक मीणा, मोहन मीणा, डॉ नरेन्द्र, राधा मोहन मीणा, धनंजय, धीरज सिंह, मृत्युंजय, दिव्या, निशीत, विभूति शर्मा, एलिजाबेथ, बरखा एवं अरविंद का आभारी हूं. जिन्होंने अपने अमूल्य समय का कुछ हिस्सा मेरी सहायता में लगाया. शायद इस मदद के बिना यह शोध कार्य इस रूप में संपन्न नहीं हो पाता. इस अनुसंधान के दौरान बांग्ला भाषा को समझने में पियाली, रिक्मी मधुकल्या एवं सौमिक की मदद को भुलाया नहीं जा सकता.

बंगाल में शोधकार्य के दौरान दीपंकर दत्ता , ताप्ती गुप्ता एवं शोभा सेन का ऋणी हूं. इनकी मदद के बिना दत्त को समझना कठिन ही नहीं, असंभव भी था. जिन्होंने शोध सामग्री को एकत्रित करने में मेरी मदद एवं विविध आयामों पर उनके दृष्टिकोण सदैव मेरे लिए प्रेरणाप्रद रहे हैं. मैं जे. एन. यू.; एन. एस. डी.; एस. एन. ए.; नाट्य शोध संस्थान; नेशनल लाइब्रेरी, कोलकाता; के पुस्तकालयाध्यक्षों का आभारी हूं, जिन्होंने मेरे अनुसंधान कार्य के दौरान हर संभव सहयोग किया.

परमपूज्य मां एवं बाबूजी, भैया-भाभी और तीनों बहनों का निरंतर स्नेह और प्यार उस समय में भी मिलता रहा, जब मुझे इसकी सबसे ज़्यादा आवश्यकता थी. इस लंबे शोधकार्य के दौरान जब भी मेरा मनोबल कमज़ोर हुआ, मेरे परिवार के समस्त सदस्यगण दृढ़ता के साथ खड़े रह कर मेरा उत्साहवर्धन करते रहे, क्योंकि आज मैं जो कुछ भी हूं, वह इन्हीं लोगों के

आशीर्वाद के कारण हूं, इसलिए उनकी आशाओं, आक्षांओं पर खड़ा उतर सकूं, यही मेरे जीवन का ध्येय है.

दिनेश, दीपू, शालू, संस्कार, आभा और रेणु जिनके साथ मेरा ज़्यादातर समय व्यतीत होता था, इस शोध के दौरान समयाभाव के कारण उनके प्रति मेरे स्नेह और प्यार में कमी रह गयी, इसका मुझ खेद है. उनका स्नेह चिरस्मरणीय रहेगा.

रमेंद्र कुमार चक्रवर्ती

विषयानुक्रमणिका

आभार

अध्याय : एक

भूमिका 1-18

अध्याय : दो 19-52

अल्काज़ी एवं उनका नाट्य संसार :
नाटक की राष्ट्रीय अवधारणा की ओर

2.1 प्रस्तावना

2.2 जीवन और कार्य

2.3 राष्ट्रीय नाट्य की अवधारना की ओर

2.4 अल्काज़ी की रंगमंचीय संकल्पना और अभिनय

2.5 अल्काज़ी का शेक्सपीयर

अध्याय : तीन 53-94

उत्पल दत्त का शेक्सपीयर : शेक्सपीयर के नाटकों में
सामाजिक चेतना की स्थापना

3.1 प्रस्तावना

3.2 एक क्रांतिकारी का जीवन और कार्य

3.3 क्रांतिकारी नाटक और दत्त

3.4 उत्पल दत्त का शेक्सपीयर प्रेम

3.5 शेक्सपीयर के नाटकों में सामाजिक चेतना

अध्याय : चार 95-140

इब्राहीम अल्काज़ी और उत्पल दत्त : शेक्सपीयर के संदर्भ में एक तुलनात्मक अध्ययन

4.1 प्रस्तावना

4.2 एपिक थिएटर एवं राष्ट्रीय थिएटर: अन-औपनिवेशिकता के दो मॉडल

4.3 इतिहास की भव्यता बनाम ऐतिहासिक द्वंद्वात्मकता : मंचन की राजनीति

4.4 शेक्सपीयर का मंचन : अभिनय का दर्शन

4.5 रूपांतरण की प्रक्रिया और राजनीति

अध्याय : पांच 141-148

निष्कर्ष

ग्रंथानुक्रमणिका 149-164

परिशिष्ट -१

परिशिष्ट -२

Ebrahim Alkazi,(b.1925).

Utapl Dutt (1929-93).

अध्याय - 1

भूमिका

इस शोध में मैंने अल्काज़ी एवं उत्पल दत्त द्वारा किये गये शेक्सपीयर के नाटकों एवं नाट्य मंचन का आलोचनात्मक अध्ययन करने का प्रयास किया है। मुझे लगता है कि शेक्सपीयर के नाटकों का भारत के संदर्भ में एक महत्वपूर्ण स्थान है। शेक्सपीयर के नाटक कहीं-न-कहीं समाज में फैली वैचारिकी, टूटते मूल्यों एवं अनावश्यक सामाजिक बंधनों की कहानी भी है, जो भारतीय संदर्भ में प्रासंगिक प्रतीत होती है। मैंने इस संबंध को स्वातंत्र्योत्तर भारत के दो महान निर्देशकों द्वारा किये गये नाट्य रूपांतरण के संबंध में देखा है। हालांकि न तो उत्पल दत्त और न ही अल्काज़ी ने न सिर्फ़ निर्देशन पर काम किया, बल्कि अपने अनुवाद एवं रूपांतरण के द्वारा इसके विस्तृत आयामों को बखूबी देखने का प्रयास किया, जो उनके द्वारा निर्देशित नाटकों के विभिन्न आयामों पर दिखाई देता है, चाहे वह तकनीकी स्तर पर प्रयोग करने का प्रयास हो या

डिज़ाइन अथवा अभिनय, नाट्य लेखन एवं प्रोडक्शन के स्तर पर नये आयाम देने की बात हो। सच कहा जाये तो अल्काज़ी एवं उत्पल दत्त ने अपने निर्देशन द्वारा शेक्सपीयर के नाटकों को नयी परिभाषाएं एवं ऊंचाइयां भी दीं। चाहे दोनों के प्रयासों में भिन्नताएं क्यों न हों।

इस दृष्टिकोण हम देख सकते हैं कि नाटकीय कथ्य के समान अर्थ होते हुए भी उसके अर्थ किस तरह से सामाजिक एवं राजनीतिक परिदृश्य में बदलते हैं और व्यक्तिगत राजनीति का भी इस पर बड़ा प्रभाव भी पड़ता है। खासतौर पर स्वातंत्र्योत्तर भारत के संदर्भ में मेरा शोध शेक्सपीयर के नाटकों को नये परिप्रेक्ष्य में समझने का प्रयास भी है। हालांकि अल्काज़ी एवं उत्पल दत्त के नाटकों को लेकर मेरा प्रयास तुलनात्मक अध्ययन पर रहेगा। लेकिन यह सिर्फ़ तुलनात्मक नहीं है, बल्कि उनकी विस्तृत नाट्यशैली एवं उनसे संबंधित सामाजिक-राजनीतिक सरोकारों का अध्ययन करना भी है।

जहां इब्राहीम अल्काज़ी, जिन्हें भारतीय राष्ट्रीय ड्रामा, राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय का पितामह भी माना जाता है और जिन्होंने अपने

उच्च कोटि के निर्देशन एवं सर्वोच्च मंचीय प्रशिक्षण को उच्च सांस्कृतिक एवं तकनीकी महारत का आधार दिया। उन्होंने शेक्सपीयर के कुछ महत्वपूर्ण नाटकों का प्रदर्शन किया, जिनमें *किंग लियर* (1964), *ओथेलो* (1969) और *जूलियस सीज़र* (1992) हैं। इसके अलावा उन्होंने आधुनिक भारतीय थिएटर को एक नयी संकल्पना एवं संरचना दी। यह सब काम उन्होंने संस्थागत आदर्शों के द्वारा परिकल्पित किया और जो बाद के वर्षों में आधुनिक भारतीय थिएटर एवं रंगकर्मियों के लिए मील का पत्थर साबित हुआ। उन्होंने अपने थिएटर प्रोडक्शनों में काफी गंभीरता एवं सावधानी से सारे एक्शनों के एक-एक हिस्से को विजुअलाइज किया और मंचन की तैयारी में उन्होंने महान दृश्य और संज्ञानात्मक शक्तियों का भी प्रयोग किया।

विचारात्मक रूप से जैसा जावेद मलिक ने कहा है कि इब्राहीम अल्काज़ी का पूरा दृष्टिकोण आधुनिक यूरोपियन ड्रामा की बुर्जुआ उदारवादी परंपरा के अंतर्गत रखा जा सकता है।[1] रोचक बात तो यह है कि अल्काज़ी यूरोपियन शैली के कुछ नाटकों से

[1] Malick, Javed (1994) Ebrahim Alkazi's 'Three Sisters' and 'The Royal Hunt of the Sun' (Playing the role of a teacher), *The Economic Times*, New Delhi, January 16,

बेहद प्रभावित थे। उदाहरणस्वरूप गोर्डन क्रेग, एप्पिया, रायल शेक्सपीयर सोसायटी एवं सर लारेंस ओलीवर के नाटकों ने उन्हें काफी प्रभावित किया। थिएटर विधा को परिभाषित करते हुए अल्काज़ी ने कहा कि थिएटर एक नाटक के अर्थों को समझने की एक पड़ताल है। जो हो सकता है कि इतिहास या वर्तमान में लिखा गया हो, लेकिन जिसके द्वारा समसामयिक विषयों को निरूपित किया गया हो। कुछ हद तक यह एक आदर्शों की परिचर्चाओं को नाटकीय 'कार्यव्यापार के द्वारा दर्शकों को संप्रेषित करने का एक माध्यम भी है। शेक्सपीयर के जूलियस सीज़र के प्रोडक्शन में उनका खयाल था कि अभिनय सिर्फ़ अपने को रंगमंच पर उतार देना मात्र नहीं है। बल्कि अभिनय उस विधा का नाम है, जिसके द्वारा रंगमंच पर उन भावों को सुचारू ढंग से नियंत्रित किया जा सके। दूसरी बात यह है कि उन्होंने अपने नाटकों में परम साफ़गोई पर बल दिया। जो उनके प्रोडक्शनों पर आदर्श के रूप में उभरा, उनका यह मानना था कि यह पूर्ण साफ़गोई नाटकीय चरित्र को व्याख्या के ज़रिये समझा जा सकता है। इस पूर्ण साफ़गोई को दृश्यात्मक अवधारणा में मंच सज्जा और वस्त्र विन्यास के संदर्भ

में भी देखा जा सकता है। इसके द्वारा कोई भी एक सर्वसंभव एकनिष्ठ मंचन एवं इसके अर्थों को भी समझ सकता है। महत्वपूर्ण बात यह भी थी कि शेक्सपीयर के नाटकों को प्रोडक्शन के द्वारा वह अभिनेता एवं अभिनय के कुछ नये आयामों को विकसित करने में सफल रहे हैं।

अल्काज़ी ने अपने प्रोडक्शनों के दौरान ज़्यादा-से-ज़्यादा नाटकीय अभ्यास पर बल दिया है, क्योंकि उनको लगता था कि नाटकीय अभ्यास का यह परिप्रेक्ष्य एक नयी सृजनशीलता का दायरा बढ़ायेगा। लेकिन मोटे तौर पर कहा जा सकता है कि उनका पूरा दृष्टिकोण थिएटर को एक मनोवैज्ञानिक व्यवस्था से देखता है, जिसके द्वारा वह इतिहास को स्मारकीय रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास करते थे। यहां पर कोई कह सकता है कि उनका यह स्मारकवाद इतिहास को किस हद तक समझ पाया। इसके विपरीत उत्पल दत्त ने नाटकों को लोगों के जीवन संदर्भों एवं आर्थिक संबंधों के रूप में प्रदर्शित करने का प्रयास किया, जिसमें थिएटर को समाज में क्रांतिकारी परिवर्तन के लिए एक महत्वपूर्ण सांस्कृतिक हथियार के रूप में संकलित किया गया। जैसा कि

ज्ञातव्य हो कि उत्पल दत्त को शेक्सपीयर के नाटकों से युवा अवस्था में ही बहुत लगाव हो गया था। बाद में उन्होंने *एमेच्योर शेक्सपीरीयंस* के नाम से दिसंबर, 1947 में शेक्सपीयर के नाटकों का एक नया प्रयोग करना शुरू किया, क्योंकि देश की आज़ादी के बाद एक नये तरह के सामाजिक केंद्र बने थे, जिनके संदर्भ में शेक्सपीयर के नाटकों का प्रयोग किया जा सकता था। इसके बाद 1949 में *लिटिल थिएटर* के नाम से एक नये सांस्कृतिक केंद्र की स्थापना की। इस बैनर के तहत शेक्सपीयर के नाटकों का मंचन किया।

उत्पल दत्त की नाट्य शैली अन्य निर्देशकों से अलग थी, लेकिन खासकर उनके द्वारा निर्देशित शेक्सपीयर के नाटकों में एक नये सौंदर्यबोध को परिभाषित किया गया है। उनके द्वारा निर्देशित नाटकों की संरचना में राजनीति का महत्व, मंच पर ड्रामेटिक स्पेस एवं संगीत का गंभीर समायोजन भारतीय नाट्य परंपरा की एक नयी शुरुआत थी। उत्पल दत्त ने अपने नाटकों में विशेष कारण से संगीत पक्ष पर ध्यान दिया। इसका पहला कारण यह था कि संगीत उनके लिए अभिनय का एक महत्वपूर्ण पूरक अंग था।

दूसरा, उन्होंने नाटक के समायोजन में संगीत की महत्ता को हमेशा बरकरार रखने की कोशिश की। वे अपने नाटक की संगीत की इकोनामी की संभावनाओं का भरपूर उपयोग करने में विश्वास करते थे।[2] चूंकि संगीत लोक तत्वों का एक महत्वपूर्ण अवयव है, उत्पल दत्त के नाटकों में इसका परिलक्षण होना अनिवार्य नहीं, तो आवश्यक ज़रूर था। संगीत खास कर मास अपील में एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है और चूंकि उत्पल दत्त का नाटक जन संस्कृति की श्रेणी में आता था, इस कारण इसमें संगीत सशक्त संप्रेषण का माध्यम बन जाता था।

इस नये दौर में थिएटर और परफ़ार्मेंस स्टडीज़ का विकास होने के साथ ही इनसे संबंधित सारी बातों की परिचर्चा ज़ोर-शोर से होने लगी है, जिसमें नाटक के अनुवाद से लेकर पाठ का रूपांतरण, अभिनेता की तैयारी, निर्देशन, स्टेज़ डिज़ाइन, अभिनय, संगीत, अनुग्रहण, आलोचना एवं इसके ऐतिहासिक संदर्भों की व्याख्या भी शामिल है। इन्हीं विस्तृत आयामों के अंदर मैंने अपने

---

[2] Dutt, Utpal (1994) Epic Theatre, August 8, The Utpal Dutt Foundation for International Theatre Studies, Calcutta.

शोध विषय में शेक्सपीयर के नाटकों के मंचन के अभिप्राय एवं महत्व को समझने की कोशिश की है। इसका महत्व इसलिए भी बढ़ जाता है कि अल्काज़ी एवं उत्पल दत्त ने उन नाटकों के आधार पर एक नये माडल को विकसित किया। जिन्हें आधुनिक भारतीय रंगमंच के दो अलग-अलग आधारभूत स्तंभ माना जा सकता है। जहां अल्काज़ी को राष्ट्रीय नाट्य का सूत्रधार माना जाता है, वहीं उत्पल दत्त को भारतीय क्रांतिकारी नाट्य परंपरा की मज़बूत कड़ी के रूप में देखा जा सकता है। हालांकि दोनों एक ही समय में, एक ही सामाजिक-राजनीतिक परिदृश्य में नाटकों का मंचन कर रहे थे। दोनों ने मंचन एवं रूपांतरण को लेकर दो नये एवं एक दूसरे के विपरीत माडल का विकास किया। लेकिन इन अंतरों को बहुत जगहों पर अंतर्विरोध के रूप में नहीं समझा जाना चाहिए। उदाहरण स्वरूप दोनों ने शेक्सपीयर के नाटकों द्वारा अधिक से अधिक लोगों के बीच पहुंचने का प्रयास किया। दूसरा, दोनों ने इस बात को स्वीकार किया कि हम शेक्सपीयर के सामाजिक महत्व के नाटकों का ही मंचन कर रहे हैं, हालांकि कुछ हद तक हमारा यह शोध सिर्फ़ अल्काज़ी एवं उत्पल दत्त द्वारा मंचित माडलों के

अध्ययन तक सीमित नहीं है, लेकिन उसका एक संरचना देना भी मुश्किल है। जैसा कि हम जानते हैं कि दोनों का संबंध दो विभिन्न तरह के सामाजिक सरोकार व राजनीति से था, जहां अल्काज़ी ने नेहरूवियन सोशलिज़्म की परिकल्पना की थी, वहीं उत्पल दत्त का नाटक मार्क्सवाद की क्रांतिकारी विचारधारा से प्रभावित था। दूसरा कारण यह भी था कि शेक्सपीयर के समान कथ्य को दोनों ने इसका दो तरह का अमलीजामा पहनाया। अल्काज़ी के बारे में कहा जा सकता है कि उन्होंने शेक्सपीयर के नाटकों को ज्यों-का-त्यों रखा, जबकि उत्पल दत्त उसका एक सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक अनुवाद करने में सफल रहे। सैद्धांतिक स्तर पर इस शोध में मैंने यह जानने का प्रयत्न किया है कि आखिर नाट्य रूपांतरण में अर्थ कौन बनाता है? क्या यह कथ्य में होता है? या उस संस्कृति में जिसमें इसका संप्रेषण होता है, या मंचन या ग्रहणीयता या कुछ और में?

शोध की प्रासंगिकता

शोध करने के पीछे मेरा मूल उद्देश्य है कि स्वातंत्र्योत्तर भारत में किस तरह से दो महत्वपूर्ण माडल उभर कर सामने आये हैं, मैं इन दो माडलों से यह देखना चाहता हूं कि किस तरह से एक सामाजिक एवं राजनीतिक आदर्श इंस्टीट्यूशन के द्वारा राष्ट्रीय संस्कृति में स्वीकृत किया जाता है। दूसरी तरफ़ मेरे मन में माडल लेने की इच्छा थी, जो फ़ार्मल इंस्टीट्यूशनल वर्क से ऊपर उठ कर नाटक की बात करता हो। इसलिए अल्काज़ी एवं उत्पल दत्त का चुनाव सिर्फ़ दो व्यक्तिगत चुनाव न होकर दो विभिन्न धाराओं का प्रतिनिधित्व करता है। जो अन्य दूसरे बड़े निर्देशकों में परिलक्षित नहीं होता है। उत्पल दत्त और अल्काज़ी के सवालों को बड़े परिप्रेक्ष्य में देखने की ज़रूरत है, क्योंकि वह संदर्भ आज और महत्वपूर्ण हो गया है। जिसमें भाषायी प्रश्न, अस्मिता का प्रश्न, क्षेत्रीयता के प्रश्न के साथ-साथ राष्ट्रीयता का प्रश्न खड़ा है। हमारा उत्पल दत्त एवं अल्काज़ी का अध्ययन इन सारे प्रश्नों से जूझने का एक प्रयास भी है। इसके द्वारा हम स्वातंत्र्योत्तर भारत में

शेक्सपीयर के पाठ को दो विपरीत धाराओं में रख कर देखना चाहते हैं। जो बहुत ही साफ़ है। मेरा संदर्भ अल्काज़ी के formalism और उत्पल दत्त के प्रोग्रेसिव माडर्निज़्म में स्पष्ट होता है।

Methodology

इस शोध को दिशा देने के लिए हर तरह के शोध पर आलंबित होना चाहूंगा। उन स्रोतों के आधार पर मैं नाटक के कथादेश का निर्माण एवं उसका पुनरावलोकन करना चाहूंगा। इसके लिए मैं अल्काज़ी एवं उत्पल दत्त द्वारा उपयोग किये गये शेक्सपीयर के नाटकों के अभिलेखों को आलोचनात्मक रूप से दृष्टि प्रदान करुंगा। इस शोध को करने के लिए मैंने कोलकाता की नेशनल लाइब्रेरी, नाट्य शोध संस्थान, उत्पल दत्त की व्यक्तिगत लाइब्रेरी से पत्र और पत्रिकाओं से, तथ्यों और चित्रों को एकत्रित किया। कोलकाता प्रवास के दौरान ही शोभा सेन, तासी गुप्ता एवं दत्त के कुछ शिष्यों का साक्षात्कार एवं शोध से संबंधित विचार-विमर्श भी किया। हालाकिं उत्पल दत्त द्वारा मंचित शेक्सपीयर के नाटकों की कोई वीडियो फ़िल्म उपलब्ध नहीं है।

अपने शोध से संबंधित तथ्यों को एकत्रित करने के लिए नयी दिल्ली स्थित राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, संगीत नाटक अकादेमी, जे एन यू के केंद्रीय पुस्तकालय और कला एवं सौंदर्यशास्त्र संस्थान के पुस्तकालय से सहायता ली है। राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय की निदेशक अमाल अल्लाना का साक्षात्कार लिया और नादिरा ज़हीर बब्बर से अल्काजी द्वारा निर्देशित *ओथेलो* से संबंधित कुछ महत्वपूर्ण बिंदुओं पर बात हुई। दत्त से संबंधित तथ्यों के बारे में सामिक बंद्योपाध्याय, डा विष्णुप्रिया दत्त से समय-समय पर विचार-विमर्श किया गया। यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि उत्पल दत्त जीवित नहीं हैं, जिससे साक्ष्यों में उनके बारे में उनके बारे में जानकारी अपूर्ण हो सकती है, परंतु अल्काज़ी के जीवित होने पर भी किन्हीं कारणवश साक्षात्कार नहीं हो पाया।

शोध प्रश्न

मैं सरल शब्दों में अग्रलिखित प्रश्नों के उत्तर ढूंढ़ने के प्रयास करूंगा। जैसेकि, आधुनिक भारतीय सामाजिक-राजनीतिक स्थितियों में शेक्सपीयर के नाटकों के प्रदर्शन की क्या प्रासंगिकता रह जाती

है? किस तरह से रूपांतरण एवं अनुवाद में नाटक के अर्थ उभर कर सामने आते हैं। इसमें राजनीतिक विचारधाराओं का क्या योगदान है और किन आयामों तक नाटक के अर्थों को दिशा प्रदान करता है? किस हद तक शेक्सपीयर के रूपांतरण को भारतीय कहा जा सकता है। यह मूल कथावस्तु से विलगित होता है या सामंजस्य स्थापित करता है? इसके द्वारा मैं यह प्रश्न करना चाहूंगा कि शेक्सपीयर का पाठ कहां तक कथ्य के परे होने के बाद भी शेक्सपीयर का पाठ रह जायेगा? उत्पल दत्त का शेक्सपीयर रूपांतरण मार्क्सवाद विचारधारा से प्रेरित था, जिसमें वर्ग संघर्ष एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। मैं यहां देखना चाहूंगा कि उनका यह 'सैद्धांतिक समझ उनके नाटकों में किस हद तक परिलक्षित हुई? तेज़ी से बदलते हुए भारतीय सामाजिक परिदृश्य में जहां क्रांति की नयी व्याख्या की जा रही है और अस्मिता एवं राष्ट्रीयता कई प्रश्न सामने आ रहे हैं। इनमें कौन-सा माडल इस अध्याय के लिए ज़्यादा उपयुक्त होगा-उत्तर उपनिवेशवाद या मार्क्सवाद। किस हद तक अल्काज़ी एवं उत्पल दत्त की राष्ट्र, राष्ट्रीयता एवं राष्ट्रीय संस्कृति की अवधारणा ने शेक्सपीयर के नाट्य

रूपांतरण को परिभाषित किया? अल्काज़ी एवं उत्पल दत्त की रूपांतरण की प्रक्रिया क्या थी? शेक्सपीयर के नाटकों में इन दोनों निर्देशकों की अभिनय शैली क्या थी? कैसे अभिनेता एवं अभिनेत्री की तैयारी करायी जाती थी?

विस्तृत रूप से मैं शेक्सपीयर के इन नाटकों के रूपांतरण की चर्चा उत्तर-उपनिवेशवाद के भारतीय संदर्भ में करना चाहूंगा। इसका शोध उद्देश्य यह होगा कि भारतीय समाज में मौजूद बहुत सारे पालिमिक्स का कैसे समाधान किया जाये, उदाहरण के तौर पर राष्ट्र, राष्ट्रीय संस्कृति एवं राष्ट्रीय अस्मिता का प्रश्न।

1. इसमें सामाजिक चेतना किस तरह से परिभाषित एवं रची जाती है?
2. भाषा, लोक संस्कृति, शास्त्रीय संस्कृति एवं पश्चिमी संस्कृति पर प्रश्न।
3. रूपांतरित कथावस्तु में मंचनीयता का निर्माण

4. राष्ट्र की मिथकीय अवधारणा एवं क्रांति की मिथकीय अवधारणा से प्रश्न।
5. उपनिवेशवाद एवं उत्तर उपनिवेशवाद में बाद के संदर्भ में इन नाटकों का महत्व।

सैद्धांतिक माडल्स

1. मंचनीयता **(Performitivity)** :

   मंचन के सारे संदर्भों को तय करता है, जिसे मंचन की निर्मिति भी कह सकते हैं। मंचनीयता को परिभाषित करते हुए रिचर्ड सेक्नर का कथन है कि मंचनीयता का दायरा सिर्फ़ नाटक तक ही सीमित नहीं है, बल्कि इसमें सामाजिक सच्चाई एवं जटिल संबंध भी शामिल है।

2. उत्तर औपनिवेशिक ड्रामा **(Post colonoial drama)**:

   हेलेन गिल्बर्ट के अनुसार अगर उत्तर औपनिवेशिक ड्रामा को संकुचित विचार में देखा जाये, उत्तर औपनिवेशिक ड्रामा एक भौगोलिक संरचनाओं में

बंधकर रह जाती है। लेकिन आज के संदर्भ में यह बात ज़्यादा प्रासंगिक नहीं है, क्योंकि प्रत्यक्ष उपनिवेशवाद के जाने के बाद और नव साम्राज्यवाद के आने के बाद उपनिवेशवाद दूसरे स्तरों पर संचालित करता है। जिसमें सारी चीज़ें बाइनरी संरचना में न रह कर मैट्रिक्स का निर्माण करती है, जिसका आकार बहुत ही विषम होता है। मैं अपने इस शोध को इस संदर्भ में भी देखना चाहूंगा।

3. मार्क्सवादी व्याख्या :

लेकिन मुझे लगता है कि बिना मार्क्सवादी विचार के दत्त को समझना उत्पल दत्त के नाटकों की गलत व्याख्या करना होगा, क्योंकि दत्त के नाट्य संसार वर्ग संघर्षों के इर्द-गिर्द घूमता है। दूसरे शब्दों में कहें तो दत्त के नाटकों **means** और **ends** दोनों मार्क्सवादी द्वंद्ववाद से जुड़े हुए हैं। लेकिन आज की समाज चेतना वर्ग संघर्ष की बात नहीं करती है। उसमें कई नये

आयाम जुड़े हैं। चाहे अस्मिता का प्रश्न हो या संस्कृति का सवाल हो।

इस शोध के प्रथम अध्याय भूमिका में मैंने अपने शोध के विषय, उसकी सीमाएं एवं शोध पद्धति की चर्चा व्यापक रूप से की है। इसमें मैंने अल्काज़ी एवं उत्पल दत्त द्वारा किये गये शेक्सपीयर के नाटकों एवं रंगमंचीय प्रणालियों का एक संक्षिप्त ब्योरा भी देने का प्रयास किया है। इसमें शोध के उद्देश्य एवं नतीजे दोनों का संक्षेप में वर्णन किया गया है।

हमारा दूसरा अध्याय अल्काज़ी पर केंद्रित है और इसमें हमने अल्काज़ी द्वारा किये गये रंगमंचीय प्रयोगों की आलोचनात्मक चर्चा की है। इसमें हमने यह भी देखने का प्रयास किया है कि अल्काज़ी ने किस तरह से नयी राष्ट्रीयता के आधार पर थिएटर की नयी परिभाषा दी।

तीसरे अध्याय में उत्पल दत्त द्वारा किये गये नाट्य प्रयोगों की चर्चा है। इस अध्याय में यह दिखाने की कोशिश की गयी है

कि किस प्रकार से उत्पल दत्त की राजनीतिक समझ एक क्रांतिकारी शेक्सपीयर को जन्म देती है।

चौथे अध्याय में इन दो महान निर्देशकों द्वारा मंचित शेक्सपीयर के नाटकों का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है और एक खास शोध निष्कर्ष पर पहुंचा गया है। अंतिम एवं पांचवें अध्याय में शोध का सार संक्षेप है।

अंत में मैं यह कहना चाहूंगा कि इस शोध में मैंने शेक्सपीयर के मूल पाठ का कोई विश्लेषण करने का प्रयास नहीं किया है और न ही मेरा काम भारत में शेक्सपीयर के नाटकों को लेकर जो नये-नये प्रयोग हो रहे हैं उससे संबंधित है और न ही भारत में शेक्सपीयर की प्रासंगिकता से। यह मेरा मुख्य विषय नहीं है। बल्कि मेरा अध्ययन मूलतः दो ऐसे रंगमंचीय माडलों पर केंद्रित है, जिनमें शेक्सपीयर एक माध्यम है।

A scene from E. Alkazi's Production King Lear (1964)

A scene from E. Alkazi's Production Othello. (1969).

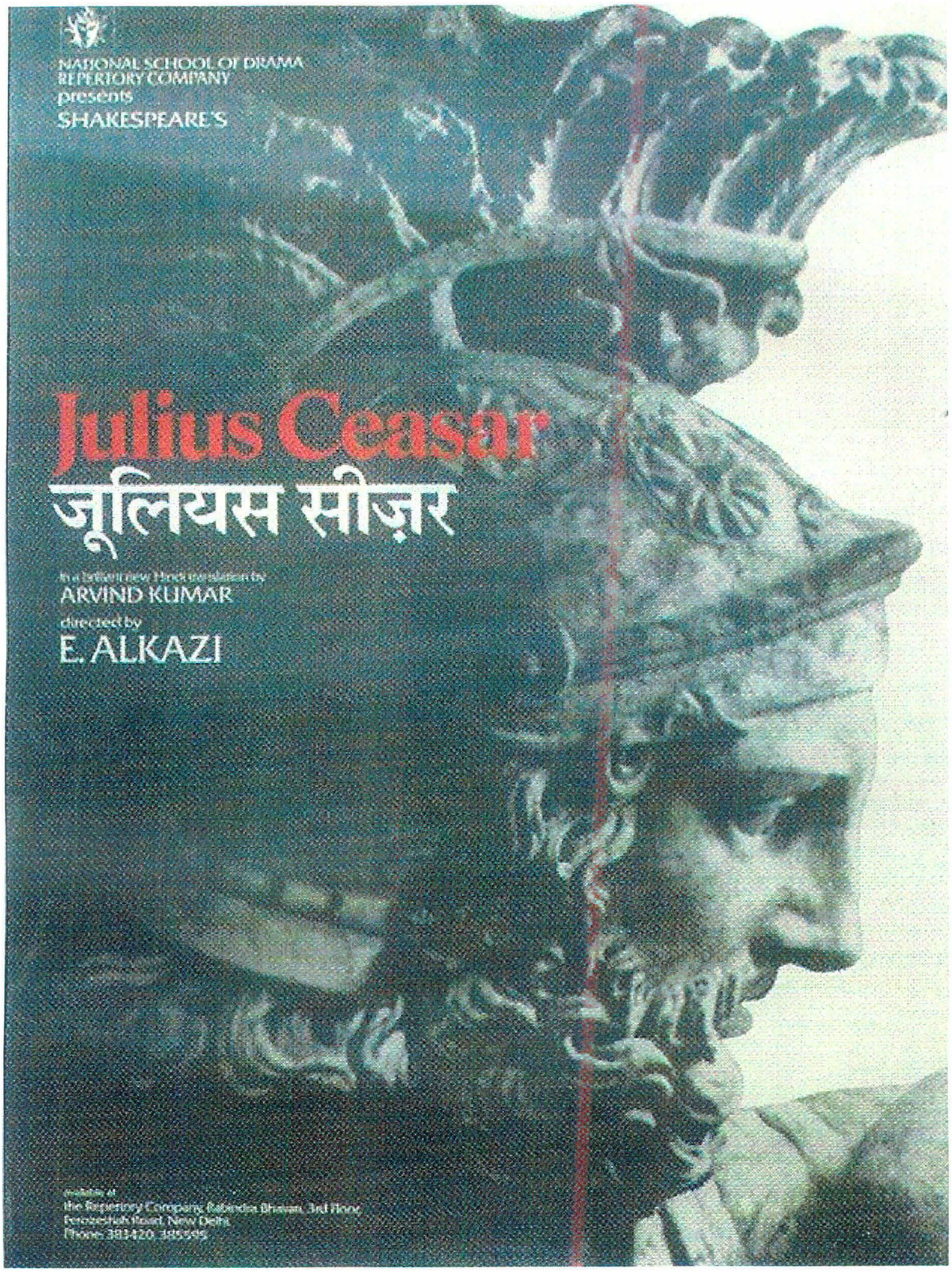
NATIONAL SCHOOL OF DRAMA
REPERTORY COMPANY
presents
SHAKESPEARE'S
Julius Ceasar
जूलियस सीज़र
in a brilliant new Hindi translation by
ARVIND KUMAR
directed by
E. ALKAZI
available at
the Repertory Company, Rabindra Bhavan, 3rd Floor,
Ferozeshah Road, New Delhi.
Phone: 383420, 385595

विलियम शेक्सपियर

जूलियस सीज़र

1992

निर्देशक

इब्राहिम अल्काज़ी

अध्याय-2

अल्काज़ी एवं उनका नाट्य संसार:

नाटक की राष्ट्रीय अवधारणा की ओर

2.1 प्रस्तावना

इब्राहीम अल्काज़ी दूसरे निर्देशकों की तरह शेक्सपीयर के नाट्य-कथ्य से प्रभावित थे। इसीलिए अल्काज़ी ने शेक्सपीयर के तीन महत्वपूर्ण नाटकों का मंचन किया है। इसमें मैं उनके द्वारा मंचित किये गये *जूलियस सीज़र* का रंगमंचीय विश्लेषण करने की कोशिश की है, क्योंकि उनके द्वारा प्रदर्शित *किंग लियर* और *ओथेलो* से संबंधित पूर्ण तथ्य नहीं है। अल्काज़ी से संबंधित उनके जीवन और कार्य के ऊपर विवरण के साथ अल्काज़ी की राष्ट्रीय नाट्य की अवधारणा की ओर, अल्काज़ी के रंगमंचीय संकल्पना और अभिनय को उप अध्यायों में प्रस्तुत किया गया है।

2.2 जीवन और कार्य

रंगमंच पर इब्राहीम अलकाजी की औपचारिक शुरुआत प्रमुख रंगकर्मी सुल्तान पद्मसी 'थिएटर ग्रुप' से बतौर अभिनेता हुई| इस ग्रुप में थिएटर के साथ-साथ साहित्य, संगीत एवं विभिन्न ललित कलाओं से जुड़े कलाकार, कवि, पेंटर, पत्रकार, प्रोफ़ेसर और युवा उद्योगपति भी थे| थिएटर ग्रुप द्वारा नाटक 'ओथेलो' तथा मैकबेथ की मौलिक प्रस्तुति की गयी| इन प्रयासों ने शुरुआती दौर में ही मुंबई रंगमंच का परिदृश्य बदल दिया| ग्रुप के डायरेक्टर सुलतान पद्मसी के असामयिक निधन के बाद मात्र 20 वर्ष की आयु में अलकाजी को ग्रुप का अध्यक्ष बना दिया गया|

10 अक्तूबर 1925 को पुणे, महाराष्ट्र में जन्मे अल्काज़ी का बचपन मुंबई के गली-मुहल्लों भिंडी बाज़ार, कोलाबा, कालबा देवी, मोहम्मद अली रोड में बीता, जहां भिन्न जाति, धर्म, बोली और पेशे के लोग रहते थी, जिनमें बोहरा, मेमन, खोजा, मारवाड़ी, बनिये, पारसी, सिंधी, बंगाली, भय्या, मोपल्स, पठान, कोंकणी, खालसी आदि मुख्य थे| बंबई (अब मुंबई) के प्रसिद्ध सेंट ज़ेवियर

कालेज के छात्र अलकाजी का मन क्लास में कम, लाइब्रेरी में ज़्यादा लगता था| उन्हें इतिहास, अंगरेज़ी एवं फ्रेंच साहित्य की पुस्तकें अच्छी लगती थीं|

वे 1947-48 में लंदन पहुंचे| रायल अकादेमी आफ़ ड्रामेटिक आर्ट तथा ब्रिटिश ड्रामा लीग में रंगमंच का विशेष प्रशिक्षण डिप्लोमा हासिल किया| बीबीसी से सर्वोत्तम ब्राडकास्टर का पुरस्कार जीता| लंदन से ही प्रादेशिक स्तर पर 'काउंटी ड्रामा एडवाइज़र' की| फ़िल्मों और स्टेज़ पर अभिनय के कई अवसर मिले लेकिन उन्होंने स्वीकार नहीं किया|

अल्काज़ी ने कंबाला हिल्स स्थित अपने निवास-पांचवीं मंज़िल के फ़्लैट के ऊपरवाली छत पर एक 'टेरेस थिएटर' बनाया, जिसमें सौ-डेढ़ सौ दर्शक आराम से नाटक देख सकें| कई प्रसिद्ध नाटक यहां मंचित और लोकप्रिय हुए|

अल्काज़ी ने मुंबई में अपने को सिर्फ़ रंगमंच तक ही सीमित नहीं रखा| असल में भूलाभाई देसाई संस्थान थिएटर लंबित कलाओं और संगीत प्रशिक्षण का एक प्रमुख केंद्र था| यहां आकर अल्काज़ी

TH-17466

का चित्रकला प्रेम भी परवान चढ़ा| वहां अल्काज़ी ने तेरह प्रदर्शनियां आयोजित कीं| शीर्षक था- 'दिस इज़ माडर्न आर्ट|' इसके अलावा अल्काज़ी ने अन्य चित्रकार मित्रों के साथ *गैलरी '59* की स्थापना की| यह भी माना जाता है कि भारत में सबसे पहले विश्व विख्यात चित्रकार पाब्लो पिकासो का परिचय अल्काज़ी ने करवाया| अल्काज़ी पिकासो की लगभग 40 मौलिक कृतियां लाये थे और उनकी प्रदर्शनी लगायी थी| रंगमंच और कला प्रदर्शनी के साथ-साथ अल्काज़ी' भारतीय नाट्य संघ, एल्फ़िंस्टिन कालेज और बांद्रा में नाटक और कला प्रशिक्षण की कक्षाओं में अध्यापन का कार्य भी करते थे|

सन 1954 तक मुंबई से अल्काज़ी के नाम और काम की गूंज राजधानी दिल्ली तक पहुंची और इससे भारत सरकार का संस्कृति मंत्रालय भी जागा| तत्कालीन शिक्षा सचिव अशफ़ाक हुसैन आगे आये और उन्होंने अल्काज़ी से कहा कि वे राष्ट्रीय स्तर पर एक नाट्य विद्यालय की रूपरेखा दें| यह भी अल्पज्ञात तथ्य है कि 1954 में राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय की मूल संकल्पना इब्राहीम अल्काज़ी ने ही तैयार की थी| शिक्षा सचिव ने अल्काज़ी को स्कूल

प्रमुख के पद की पेशकश की| किंतु उस समय अल्काज़ी द्वारा उसे इनकार कर दिया गया|

1962 में संयोग से संगीत नाटक अकादेमी के तत्कालीन वायस चेयरमैन का मुंबई आगमन हुआ| उनकी अल्काज़ी से भेंट हुई| फिर निदेशक पद की पेशकश की गयी और अंततः उन्होंने एनएसडी निदेशक का पद स्वीकार किया| इब्राहीम अल्काज़ी राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय के निदेशक पद पर लगभग सोलह वर्ष रहे (1962-77)| इसी काल में विद्यालय के अधीन 'रंगमंडल' की स्थापना भी की गयी|

उन्होंने 'द थिएटर यूनिट बुलेटिन' मासिक पत्रिका का संपादन भी किया जो समय की अकेली नाट्य मंच की पत्रिका थी| अल्काज़ी की अपनी प्रस्तुतियों का महत्व इनकी समग्र रंग दृष्टि के कारण रहा है| वे अपनी प्रस्तुतियों की मंचकल्पना स्वयं करते थे| यही कारण था कि *स्टेज़ डिज़ाइन थ्रूआउट द वर्ल्ड सिंस 1950* के विशेष संकलन में इनकी मंच परिकल्पनाएं प्रकाशित हुईं| अल्काज़ी ने कई प्रेक्षा गृहों का विन्यास एवं निर्माण भी किया है, जिसका रंगमंचीय आंदोलन में महत्वपूर्ण योगदान है| खुले एवं भव्य रंगमंच

पर उनका विशेष जोर रहा| जो भारतीय परिप्रेक्ष्य के लिए संगत है| कई तरह के ऐतिहासिक स्मारक और अवशेषों में विशाल और ऐतिहासिक नाटकों के प्रदर्शन द्वारा इन स्थानों के नाटकीय प्रयोग भी स्थापित किये गये|

रंगमंचीय आंदोलन में महत्वपूर्ण योगदान के लिए अल्काज़ी को 1962 का निर्देशन पुरस्कार संगीत नाटक अकादेमी द्वारा दिया गया और 1967 में संगीत नाटक अकादेमी ने फ़ेलो भी निर्वाचित किया और 1966 में भारत सरकार ने उन्हें पद्मश्री की उपाधि से नवाज़ा और 1990 में रंगमंचीय योगदान के लिए पद्म भूषण की उपाधि भी दी| मध्य प्रदेश सरकार द्वारा 1986-87 का कालिदास सम्मान दिया गया|

राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय के तत्कालीन इतिहास को इब्राहीम अलकाजी की व्यक्तिगत सफ़लता और असफ़लता से जोड़ कर देखने की एक आम धारणा-सी बन गयी है| इसलिए इब्राहीम अल्काज़ी को समझने के लिए तत्कालीन राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय की स्थिति को समझना भी अति आवश्यक है| दिल्ली के थिएटर जगत में इब्राहीम अल्काज़ी ऐसा नाम है, जिसके बारे में निश्चित

प्रतिक्रियाएं व्यक्त की जाती हैं| हिंदी थिएटर उत्तरी क्षेत्र का थिएटर था| अल्काज़ी के प्रयासों से ही राष्ट्रीय थिएटर में कुछ ऐसी शब्दावलियां विकसित की गयीं, जिनके तहत थिएटर जगत में अल्काज़ी के योगदान को देखा जा सकता है|

निर्देशक के तौर पर उन्होंने सामने आयीं चुनौतियों का सामना करते हुए मज़बूती से नित्य नये सृजनात्मक प्रयोग किये और थिएटर प्रशिक्षण और शोध के क्षेत्र में राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय का संरचनात्मक ढांचा खड़ा किया| उन्होंने इस संस्था से जुड़ कर राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय स्तर के नाट्य संस्था के रूप में स्थापित किया| एक करिश्माई शिक्षक के रूप में उन्होंने अपने छात्रों के लिए ऐसी दुनिया का निर्माण किया, जहां पर छात्र नाटकीय और मानसिक सोच को रुचिपूर्ण तरीके से अभिव्यक्त कर सकते हैं| और नाट्य निर्देशक के तौर पर उन्होंने अनगिनत नाटकों का निर्देशन किया| जिसमें कि स्थानीय थिएटर के दृश्यों की भांति ताज़गी महसूस होती थी| आलोचकों का यह मानना है कि यहां तक कि

पाश्चात्य कला से प्रभावित नाटककार के रूप में उन्होंने भारतीय और पारंपरिक नाट्य कला को नज़रअंदाज़ किया।[3]

इस शोधपत्र में मेरा उद्देश्य यह उजागर करना नहीं है कि इब्राहीम अल्काज़ी राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय के संत थे अथवा लोग उन्हें कितना पसंद या नापसंद करते थे, क्योंकि अंततोगत्वा जिस विषय पर मैं शोध कर रहा हूं, उसमें इस प्रकार के चारित्रिक विश्लेषण का खास महत्व नहीं है। अगर महत्व है तो उनके नाट्य शिल्प का।, अगर महत्व है तो उनके द्वारा तैयार किया गया वातावरण, कार्यशैली, कार्यपद्धति और विषय वस्तु का, जिसकी आधारशिला पर राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय जैसा संस्थान आज खड़ा है। 1950 में *राडा* से प्रशिक्षण प्राप्त कर मुंबई लौटे और 1962 में राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय के निदेशक का पद प्राप्त करने के बीच उनकी ख्याति एक ऊर्जावान नाट्य निर्देशक और प्रशासक के तौर पर उनकी प्रसिद्धि स्थापित हो चुकी थी, हालांकि इंगलैंड जाने से पहले ही वे एक थिएटर ग्रुप में कलाकार के तौर पर कार्यरत थे, जिसके सदस्यों में शिक्षा जगत के लोग, कलाकार और पत्रकार थे।

---

[3] Arora, Keval (2003). Ebrahim Alkazi, *NSD Journal*, May 2003, No.7.p.24.

हालांकि यहां पर उनका मुख्य कार्य संस्था को चलाना और समूह को व्यवस्थित करना था| अपने बंबई प्रवास के दौरान उन्होंने एक थिएटर ग्रुप बनाया, जिसने बांबे थिएटर जगत में अपनी तकनीकी विशेषताओं के कारण हलचल पैदा कर दी| उनके थिएटर का प्रस्तुतिकरण हमेशा इनफ़ार्मल टेरेस थिएटर के ऊपर होता था|

वे राष्ट्रीय नाटक को एक विशिष्ट भाषा देना चाहते थे, जिसके लिए उन्होंने हिंदुस्तानी को चुना| उनका मानना था कि 'अगर नाटक में खुद महत्वपूर्ण सुधार करना है तो उसकी प्रस्तुति, हिंदी या हिंदुस्तानी में ही करनी होगी|[4] उनका यह बयान इस मायने में काफी दिलचस्प हो जाता है| क्योंकि उनके विरोधियों का मानना था कि अल्काज़ी सौंदर्यबोध और स्वाद में भारतीय नहीं है| इसलिए वह राष्ट्रीय थिएटर की आशाओं पर खरे नहीं उतर सकते थे|

अल्काज़ी के राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय आने से पूर्व छात्रों का ड्रामा के साथ जो सरोकार था, वह क्लास रूम तक सीमित था, वह भी एकांकी नाटक के द्वारा| अगर नाटक की संपूर्ण प्रस्तुति होती थी, तो साल के अंत में| अब नाटक कर-करके सीखने की प्रक्रिया

---

[4] History Enact 1981-a

इतनी महत्वपूर्ण हो गयी कि यह कहना अनुचित नहीं होगा कि प्रशिक्षण प्रक्रिया को प्रस्तुतिन्मुख बना दिया| इस तरह के कार्य की महत्ता को समझने में संस्था में किये गये उनके बदलावों को समझना अति आवश्यक है|

वे चाहते थे कि संस्था का समय-समय पर परीक्षण हो, ताकि वे अपनी उपयोगिता सिद्ध कर सकें| इसीलिए उन्होंने प्रशिक्षण और तकनीकी के सारे आयामों को लोगों के बीच रखने का प्रचलन शुरू किया| इस प्रकार उनके व्यवसाय का मूल्यांकन, जीवंत प्रस्तुति को देख कर आम जन भी कर सकी|

इस संदर्भ में अल्काज़ी के नाट्य विद्यालय के शुरुआती दिनों को देखा जा सकता है, जिसके अंतर्गत संस्थान द्वारा प्रस्तुत अधिकतर नाटकों का निर्देशन उन्होंने स्वयं किया, साथ ही साथ प्रस्तुति के विभिन्न आयामों पर नियंत्रण रखना प्रशिक्षु छात्रों का उत्साहवर्धन करना तथा प्रदर्शनकारी तरीके से पढ़ाना भी शामिल था| अल्काज़ी का इस बात पर काफी जोर था कि नाट्य विद्यालय के छात्र विभिन्न काल खंड से जुड़े, न सिर्फ़ नाटक के रूप में

बल्कि कला के विभिन्न आयामों यथा पैंटिंग, मूर्तिशिल्प इत्यादि पर अधिक से अधिक पुस्तकों का अध्ययन करें|

इस पूरी प्रक्रिया पर अनुराधा कपूर का मानना है कि अल्काज़ी के अंदर एक कलाकार बनाने के क्षमता थी| उन्होंने युवा पीढ़ी के कलाकारों को सोचने के लिए प्रोत्साहित किया| राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय में अपना योगदान देने के दो वर्ष भीतर ही उन्होंने रिपर्टरी कंपनी की स्थापना की ताकि नाट्य प्रस्तुति को प्रभावी ढंग से प्रस्तुत किया जा सके| रिपर्टरी की स्थापना का मुख्य उद्देश्य यह था कि जहां एक तरफ़ व्यावसायिक थिएटर की स्थापना की जाये, दूसरी ओर प्रायोगिक कार्यों की सुविधाएं मुहैया करायी जायें| एक तरह से रिपर्टरी ने ड्रामा स्कूल के स्नातक को सुविधाएं मुहैया करवायीं, जिन्हें ये समूची सुविधाएं उपलब्ध नहीं थीं| इस प्रकार रिपर्टरी से जहां एक तरफ़ स्कूल के स्नातक को फ़ायदा हुआ, वहीं दूसरी तरफ़ राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय को इससे काफी लाभ पहुंचा|

राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय के निदेशक के तौर पर इनकी पहली प्रस्तुति मोहन राकेश कृति *आषाढ़ का एक दिन* थी| इनके दूसरे प्रोडक्शन *अंधायुग* ने धर्मवीर भारती के नाटकों को आधुनिक

भारतीय नाट्य जगत में स्थापित कर दिया| इसके बाद कालिदास कृत *अभिज्ञान शाकुंतलम* (1964), सोफ़ोक्लीज़ की कृति *ओडिपस रेक्स* (1969), स्ट्रिंडबर्ग की कृति *द फ़ादर,* टीएस इलियट कृत *द वेस्ट लैंड* (1964), बादल सरकार कृत *बाकी इतिहास* (1968), ओसबोर्ने कृत *लुक बैक एंगर* (1974), शूद्रक कृत *मृच्छकटिकम* इत्यादि एक के बाद एक प्रस्तुतियां आयीं| ये सारे नाटक हिंदी-उर्दू एवं मिश्रित हिंदुस्तानी में प्रस्तुत किये गये| अभिनय में अल्काज़ी का खास ज़ोर अभिनय के व्याकरण, चरित्रों के विश्लेषण और गत्यात्मकता और भाव भंगिमा के द्वारा चरित्रक भावों को व्यक्त करने पर था|

अल्काज़ी के अनुसार हर प्रस्तुतिकरण में ये तत्व होते हैं- संरचना, कोरियोग्राफी, संगीत और लय और आवाज़ तथा बोले गये शब्द का ज़ादू, रंग और दृश्य की मोहकता, भावनाएं और संवेदनाएं-हर कला रूप की ये मूलभूत आवश्यकताएं हैं| मुझमें दृश्य की अपार संवेदना है, परिकल्पना है जो कला, वास्तु शिल्प और मेरे चारों ओर बदलते जीव जगत के दृश्यों के लगातार अध्ययन से

आयी है, मुझे संगीत की भी उतनी ही गहरी समझ है और भाषा के प्रति मुझमें स्वाभाविक संवेदना है| [5]

अल्काज़ी की दृष्टि में रंगमंच सामाजिक बदलाव का माध्यम है| इसके साथ-साथ मनोरंजन भी इसमें शामिल है| उनका शुरू से यह प्रयास रहा है कि व नौटंकी, तमाशा, जात्रा, मनाई एवं यक्षगान के साथ संस्कृत नाट्य परंपरा में बेहेतरीन चीज़ों को मिला कर नयी चीज़ दें| जब उन्होंने *जूलियस सीज़र* का मंचन किया तो इसका कारण वे हिंदी में अच्छे एवं मौलिक नाटकों का अभाव बताते थे| हिंदी रंगमंच के प्रति उनका नज़रिया नाटक में नयी ज़मीन तलाशने का है| यह खतरे का काम अवश्य है, लेकिन सब कुछ प्रशासन पर नहीं छोड़ा जा सकता| रंगकर्मियों का दायित्व बनता है कि वे निरंतर प्रयोग करते रहें|

ब्रिटेन में रह कर उनकी प्रतिभा का सही उपयोग नहीं हो पा रहा था| क्योंकि ब्रिटिश लोग ड्रामा स्कूल को कभी गंभीरता से नहीं लेते, क्योंकि वे मानते थे कि थिएटर को अनुभव से सीखा जा

---

[5] रंग प्रसंग, जनवरी-जून, 1998 पृष्ठ-36.

सकता है-अभिनय कराते हुए नहीं| वे रंगमंच को संशय की दृष्टि से देखते थे|

2.3 राष्ट्रीय नाट्य की अवधारणा की ओर

स्वातंत्र्योत्तर भारत में इब्राहीम अल्काज़ी कला के क्षेत्र में नेहरूवादी समाजवाद और धर्मनिरपेक्ष प्रतीक के रूप में उभरे| उन्होंने नये स्वतंत्र हुए राष्ट्र के नेहरूवादी माडल को थिएटर एवं सौंदर्यशास्त्र में स्थापित किया, जो मुझे लगता है कि कहीं-न-कहीं बुर्जुआ सामाजिक यथार्थवाद का एक हिस्सा था| हालांकि अल्काज़ी ने कभी भी खुल कर अपने आप को राष्ट्रवादी नहीं माना, लेकिन अप्रत्यक्ष रूप से एक धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र एवं उसके संस्थानवादी दृष्टिकोण को नाटक में स्थापित करने की पुरजोर कोशिश की| इसमें वे व्यावसायीकरण के भी विरोधी थे| ऐसे समय में, जब भारतीय संस्कृति के सजातीय पहलू को विदेशी बाजार में उत्पाद के रूप में परोसा जा रहा था और इसके व्यावसायीकरण की पूरी संभावना दिख रही थी, तब बहुत सारे लोगों के साथ इब्राहीम अल्काज़ी ने भी इसकी आलोचना की| उन्होंने यहां तक चेतावनी दे

डाली थी कि भारतीय थियेटर का व्यावसायीकरण उसे खत्म कर देगा।

बंबई (अब मुंबई) में दो शौकिया थिएटर ग्रुपों के संस्थापक और राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, नयी दिल्ली के भावी निदेशक इब्राहीम अलकाजी लंदन के रॉयल अकादमी आफ़ ड्रामेटिक आर्ट्स से डिग्री हासिल करने के बाद 1950 में बंबई लौटे। उन्होंने यह दावा किया कि उन्होंने मुख्यतः यह सीखा है कि 'थियेटर में उन्हें क्या नहीं करना चाहिए' [और] यह कि 'थिएटर में काम करना काफी हद तक आत्मशिक्षा' का सवाल है। थियेटर ग्रुप (1950-54) और थियेटर यूनिट (1954-62) के एक संस्थापक सदस्य होने के नाते, उन्होंने रंगकर्मियों और दर्शकों दोनों के लिए, कला और रंगमंच के क्षेत्र में शिक्षा और प्रशिक्षण के व्यापक कार्यक्रमों की शुरूआत की और रंगकर्म के आधार पर गैर व्यावसायिक थिएटर प्रोडक्शन के विचार को आगे बढ़ाया।

1950 से 1970 के दशक तक एक निर्देशक और प्रशासक के रूप में अल्काज़ी का काम दर्शक वर्ग को तैयार करने और उसे एक स्थायी दर्शक के रूप में स्थापित करना भी रहा। *थियेटर ग्रुप*

और *थियेटर यूनिट* के प्रबंधन के दौरान बंबई (1950-62) में दर्शकों का विकास प्राथमिकता थी, क्योंकि उनके विचार से 'थियेटर की असली परीक्षा' कलाकार की दर्शकों के साथ संवाद करने की क्षमता और, प्रस्तुति के लिए दर्शकों की ग्रहणशीलता में होती है।

व्यावसायीकरण और कॉर्पोरेट जगत के प्रायोजन की फूहड़ता के प्रति उनकी अरुचि के कारण उनके अधिकतर विकासात्मक प्रयास सांस्कृतिक नौकरशाही द्वारा प्रायोजित किये जाते रहे। अंगरेज़ी में विदेशी उच्चायोग के लिए प्रदर्शन करने की संस्कृति के बारे में अल्काज़ी ने महसूस किया कि इसने दिल्ली को एक सांस्कृतिक रेगिस्तान में तबदील कर दिया है, जिसका वास्तविक जीवन से कोई संबंध नहीं है और नाटक को दिखावा बना कर रख दिया गया है। ऐसे समय में जब दिल्ली में नाटक की कोई संस्कृति नहीं थी, अल्काज़ी ने दिल्ली के समाज से एक दर्शक वर्ग तैयार करने पर ध्यान केंद्रित किया। स्मारकीय संरचनाओं और ऐतिहासिकता का विस्तार करने के लिए उन्होंने एक सख्त प्रतिबंधित वातावरण में थिएटर के लिए आयोजन स्थलों का विस्तार किया, उन्होंने संगीत नाटक अकादमी के मैदान पर स्थायी

खुले रंगमंच 'मेघदूत' का निर्माण कराया और दिल्ली के कुछ दूसरे खुले रंगमंचों फ़िरोज़शाह कोटला और तालकटोरा स्टेडियम को नयी ज़िंदगी दी। इन स्थलों पर मंचित हुए अल्काज़ी के प्रोडक्शन *तुगलक* , *अंधायुग, किंग लियर* में गुणवत्ता, संप्रेषणीयता और ऐतिहासिक महत्व का जोरदार समावेश था, इस अर्थ में कि वे दिल्ली में दर्शक वर्ग के अनुभव के लिए एक नया मोड़ बने।

सन 1977 में अलकाजी के राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय छोड़ने के बाद विद्यालय का कोई भी प्रोडक्शन उस पैमाने पर भव्य नहीं हो पाये, पांच-छह हज़ार की दर्शक संख्या में भी कमी आयी, लेकिन उनके प्रयासों से रिपर्टरी कंपनी एक व्यावहारिक पेशेवर उद्यम बनने में सफल रही।[6]

अलकाजी ने अंतरराष्ट्रीय (विशेषकर यूरोपीय) निर्देशकों के साथ सहयोग से एक मजबूत राष्ट्रीय उपस्थिति और सक्रिय कार्यक्रम को बरकरार रखा। स्वतंत्रता के पश्चात कला और थियेटर के क्षेत्र में एक व्यापक दृष्टिकोण उनका विशिष्ट योगदान है, जिसे

---

[6] Aparna P. Dharwadekar, *Theatre of Independence : Drama, theory and urban performance*, New Delhi : Oxford University Press, p.98

उन्होंने संस्थागत कार्यों के क्षेत्र में लागू किया| 1950 में मुंबई के थिएटर ग्रुप के लिए उनके द्वारा तैयार किये गये थियेटर शिक्षा पाठ्यक्रम में पैंतीस व्याख्यान हैं, जो थियेटर, ड्रामा साहित्य और ललित कलाओं, राजनीति, समाजशास्त्र और अर्थशास्त्र के सभी पहलुओं को समेटे हुए है, क्योंकि वे कला और थिएटर के सूत्रों के बीच अंतरसंबंधों में विश्वास करते थे|

नेशनल स्कूल ऑफ ड्रामा के निदेशक के रूप में, अलकाजी ने रंगमंच के लिए वैश्विक ड्रामा और मंचन के क्षेत्र से चुने हुए क्षेत्रों में विशेषज्ञता के साथ व्यापक आधारवाले सैद्धांतिक और व्यावहारिक शिक्षा तीन साल शैक्षिक पाठ्यक्रम को स्थापित किया| यह भारत में थिएटर प्रशिक्षण के लिए एक मॉडल बन चुका है| पुनः, शिक्षाशास्त्रीय सिद्धांतों में यह अंतर्निहित था कि महत्वपूर्ण भारतीय, पश्चिमी और गैर पश्चिमी परंपराओं, क्लासिकल, आधुनिक और समकालीन परंपराओं को जाने बगैर थिएटर नहीं सिखाया, सीखा या किया जा सकता|[7]

---

[7] Aparna P. Dharwadekar, *Theatre of Independence : Drama, theory and urban performance,* New Delhi : Oxford University Press, p.97.

2.4 अल्काज़ी की रंगमंचीय संकल्पना और अभिनय

अल्काज़ी के मंच महज दिलचस्प होने भर से अधिक भी थे| लगभग परिपूर्ण प्रकाश और उत्कृष्ट संगीत (और ध्वनि संरचना) के साथ प्रस्तुति दर्शक पर सीधे प्रभाव डालती थी| लेकिन यह भव्यता ही काफी नहीं थी| मंच पर अभिनेता को अपना अपेक्षित अभिनय भी साबित करना होता था|[8] यहां तक कि सीमित संसाधन और स्पेस में भी वे चमत्कार कर सकते थे| उदाहरण के लिए, उन्होंने रोडिन्कोम को जीवंत रूप से मंच पर साकार किया| मुश्किल से पाँच फुट छह इंच के छोटे फ्रेमों ने मंच को भरा। हल्के-हल्के और सावधानी से बोले गये शब्द सभागार में सेलो वाद्य की तरह ध्वनित होते रहे| अलकाजी अभिनेता को एक कल्पनाशील रचनाकार के रूप में देखते थे, जिसके निर्माण के लिए हमें कोई विशिष्ट तंत्र नहीं खड़ा करना चाहिए| अभिनेता के प्रशिक्षण के बारे में बात करते हुए उन्होने हमें अनिवार्य तौर पर इन दो चीज़ों को

[8] Rajagopal, Ranjini (1994). Teaching is believing. The Indian Express, 23 Jan.

ध्यान में रखने की बात पर बल दिया| (एक) अपने आप में रंगमंच की प्रकृति और (दो) भारत में थिएटर की वर्तमान स्थिति| थिएटर एक जड़ संस्था नहीं है, बल्कि बदलते जीवन और जीवन की अवधारणा को प्रतिबिंबित करने का एक परिवर्तनशील माध्यम है|

अभिनेता के प्रशिक्षण को निर्धारित करनेवाला दूसरा कारक है : भारत में थिएटर की वर्तमान स्थिति| एक भारतीय अभिनेता को आज प्राचीन संस्कृत नाट्य साहित्य, क्षेत्रीय नाट्य साहित्य (परिष्कृत और लोक दोनों) को ध्यान में रखना चाहिए और तीसरे, एक भारतीय अभिनेता को अपने सामने आये सभी नाट्यरूपों और शैलियों की सभी किस्मों की व्याख्या करने में सक्षम होना चाहिए| संस्कृत नाटक में सख्त रीतिवाद है, जो कथ्य के औपचारिक ट्रीटमेंट की मांग करता है, उसी तरह लोक नाट्य के अनेक तत्व हैं, जो अप्रतिरोध्य माने गये हैं| भारतीय कलाकारों की वर्तमान पीढ़ी को व्याख्या के अपने माध्यम के रूप में अभिनय शैली को अपनाने के सवाल पर अल्काज़ी का मानना था कि अभिनय की किसी शैली को परंपरा की समकालीन अभिव्यक्ति के माध्यम के

रूप में अपनी जगह तलाशने का काम इतिहास के ज़रिये होना चाहिए| लेकिन भारतीय रंगमंच में समकालीन शैलियों के बीच गहरी खाई है| इसका कारण है कि हमारे देश में पश्चिमी देशों की तरह एक निरंतर तर्कसंगत और ऐतिहासिक विकास नहीं हुआ है। जो चीज़ वर्तमान स्थिति को और भी अधिक क्षणिक और परिवर्तनशील बनाती है , वह है समय और स्पेस पर नियंत्रण| जहां संस्कृत नाटक का मुख्य उद्देश्य भावना या रस को उभारना था| अपने स्वरूप में संस्कृत नाटक ड्रामेटिक कविता जैसा था और मुख्यतः एक़ सभ्य बौद्धिक अभिजात वर्ग की तुष्टि के लिए था वहीं आधुनिक भारतीय नाटक का बड़ा हिस्सा इब्सन, स्ट्राइंडबर्ग, हाप्टमान, गाल्सवर्दी और शा जैसे लेखकों- जिनमें से कुछ के नाम ही लिये गये हैं- की तकनीकों और विषयों द्वारा प्रभावित था, जिनके काम में पश्चिम की नाट्य परम्परा के अनुसार मनोवैज्ञानिक संघर्ष एक स्पष्ट बुने हुए प्लाट में कार्य करता है|

अल्काज़ी ने भारतीय और पाश्चात्य दृष्टिकोणों के बीच एक बड़ी खाई देखी है। उनका मानना था कि एक तरफ़ इसके थिएटरिकल ट्रीटमेंट में औपचारिक इशारों, गद्य और पद्य में आये

हुए परिवर्तन और पुराने आदर्शवादी संस्कृत थिएटर के तत्वों के पात्रों और प्लाटों के बीच एक सामंजस्य स्थापित करने और दूसरी तरफ़ वे समकालीन भारतीय रंगमंच में जीवन के एक जीवंत यथार्थवादी चित्रण की ज़रूरत पर बल दिया|

एक अभिनेता को शुरुआत के लिए एक आधारभूत आम शिक्षा के बतौर-जो उसे भारतीय आधुनिक थिएटर में प्रभावी रूपों, शैलियों और माध्यम की उलझा देनेवाली जटिलता को समझने में सक्षम बनाती है, जिसकी ज़रूरत होती है वह अभिनय की एक उतनी स्थिर तकनीक नहीं है| शिक्षा में पहला कदम छात्र के व्यक्तित्व की एकता, उसके और वातावरण के बीच एक गतिशील संबंध को लक्षित होना चाहिए| एक भ्रमित कलाकार जैसी कोई चीज़ नहीं होती| कला विचारों और अभिव्यक्ति में स्पष्टता की अपेक्षा करती है|

शारीरिक अभिनय में, अल्काज़ी ने व्यापक तौर कलाबाज़ियों, इंप्रोवाइज़ेशन और दिमाग का उपयोग किया| उनका कहना था कि छात्रों को ड्रामाटिक रचना के स्रोतों को देखना चाहिए| इस प्रक्रिया में, छात्र शीघ्र ही देख लेंगे कि काव्यात्मक उल्लास पर्याप्त नहीं है|

वह अनुभूतियों से सीखेंगे, जो कि उनके आसपास के जीवन की पड़ताल, प्रकृति, मनुष्यों और पशुओं के व्यवहार, भिन्न प्रकार के लोगों की भिन्न परिस्थितियों में भिन्न प्रतिक्रियाओं और विभिन्न भावनाओं से उपजे तनाव से पैदा होता है| यथार्थ के इस सूक्ष्म और उद्देश्यपरक अवलोकन को छात्रों को थिएटरिकल संदर्भों में लागू करना सीखना चाहिए| इस प्रक्रिया में, बिना वाणी की मदद के, शुद्ध रूप में गतियों और इशारों के ज़रिये उसे जीवन को कला में रूपांतरण की यातना (प्रसव पीड़ा) के अनुभव से गुजरना चाहिए|

इसी के साथ-साथ छात्रों को अपने शरीर और अपनी भावनाओं की पुनर्खोज करनी चाहिए, अपने मस्तिष्क को नये सिरे से सुसज्जित करना चाहिए-चुक गये पाठों, परिभाषाओं और विचारों से नहीं, जिनसे सार निकाले जा चुके हैं और अब जो सूखे रेशे भर रह गये हैं, बल्कि नयी पढ़ी गयी महान रचनाओं से, जिनकी ताज़ा और संपुष्ट संगत में मस्तिष्क को महान स्वप्नों, अनुभूतियों और कार्रवाइयों की प्रेरणा मिल सकेगी|

अल्काज़ी ने पश्चिमी ड्रामा और पूर्वी ड्रामा अथवा संस्कृत ड्रामा अथवा किसी अन्य ड्रामा में कोई अंतर नहीं पाया| उनके लिए

समस्त कलाओं की साझी बुनियाद मनुष्य की अनुभूतियां हैं और मनुष्य की अनुभूतियां विश्व में हर कहीं समान होती हैं| इसलिए वे पाते हैं कि पूरे विश्व में कला का विकास कमोबेश एक परिपाटी पर हुआ है| अभिनय की कला और प्रोडक्शन की कला के बीच संबंध के बारे में उनकी अवधारणा भी बेहद स्पष्ट थी| उन्होंने इनके बीच के नज़दीकी संबंध को स्थापित करने के लिए निरंतर कोशिश की| हालांकि ये दोनों पहलू थिएटर प्रोडक्शन में उपयोग में लाये जाते हैं, प्रोडक्शन में अभिनय भी शामिल होता है| एक नाटक की अभिनय के द्वारा व्याख्या के लिए एक शैली की ज़रूरत पड़ती है, जिसे प्रोड्युसर की व्याख्या से निर्मित होना चाहिए और उसे नाटक की आंतरिक सुंदरता को प्रकट करता हो| यदि एक अभिनेता अपने लिए ऐसी शैली चुनता है जो प्रोड्युसर की कोशिशों को बेअसर करती हो तो कला की पूर्णता का अराजकता होना स्वाभाविक हो जायेगा| इसलिए एक नाटक को उसकी ज़रूरत का एक-एक रंग देने के लिए अभिनेता और प्रोड्युसर को अनिवार्यतः साथ मिल कर काम करना चाहिए| उनके अनुसार, अभिनय की शैली खुद नाटक और उसकी शैली के सार द्वारा भी निर्धारित होती है|

थियेटर में विविधता के बारे में अल्काज़ी कहते हैं, 'मैं थिएटर के किसी एक प्रकार के थिएटर में विश्वास नहीं करता| एक संगीतमय थिएटर, हल्का मनोरंजन भी होना चाहिए और इन सभी समूहों के बीच एक प्रकार का सह अस्तित्व भी होना चाहिए|'[9] यही कारण है कि वे सब तरह के नाटक देखने जाते थे, चाहे वह एक कॉमेडी हो, या फ़ार्स| वह इन्हें अपनी ही शर्तों पर देखते थे| अल्काज़ी हमेशा इसको लेकर संवेदनशील बने रहे कि नयी रंगमंचीय भाषा के क्षेत्र में क्या चल रहा है-और जैसे-जैसे इस क्षेत्र में उन्नति होती है, लोग यथार्थवादी तत्वों की पहचान कर लेते हैं, जो दर्शक वर्ग को एक सार्थक थिएटर की ओर ले जाते हैं| वे निर्बाध रूप से 'व्यक्तिगत' विचार द्वारा निर्मित हुए थे. यही कारण था कि कैरियर के शिखर के दिनों में राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय से उन्होंने अवकाश ले लिया|[10]

थियेटर में उन्होंने खोजा कि कैसे एक अकेले मानवीय कार्य के पीछे व्याकुलता होती है, जिसमें उद्देश्यों की पहचानी जा सकने योग्य जटिलताएं मौजूद होती हैं| इसलिए थिएटर उद्देश्यों के सार-

---

[9] Ibid.
[10] Ibid.

संक्षेपीकरण और उन्हें मान्यता देने का एक माध्यम भी है| उन्होंने पेशेवर ज़िम्मेदारी की ज़रूरत को महसूस किया| यहां मनुष्य का सामना पसंदीदगियों से होता है, वह निर्णय लेता है, वह कार्रवाई करता है और यह प्रक्रिया थिएटर में आसान हो जाती है| उनके अनुसार :

> तर्क, जिम्मेदारी, कार्रवाई: ये हमें आदिम और बर्बर थिएटर की अवधारणा से दूर ले जाते हैं, ओझा-गुणी के विचार : वह उन्मादी मनुष्य, अबूझ रुलाइयों के साथ, ईश्वर द्वारा नियंत्रित अपनी उमंग की अवस्था के ज़रिये वह दर्शकों के सामने एक सम्मोहक, चमत्कृत कर देनेवाली माया का सृजन करता है| नाजीवाद औए फ़ासीवाद के पागलपन के चौथाई सदी बीत जाने के बाद इस प्रकार की शैतानियत को रचना थिएटर का काम नहीं है| हमारे अतीत की पीड़ा, वेदना और अपमान से हमें एक ऐसी दुनिया रचने की ज़रूरत है,

जिसमें हम एक योग्यता का काम कर सकें, जो हमें सर्वोत्तमों में अलग पहचान सके : तर्क|[11]

2.5 अल्काज़ी का शेक्सपीयर

इब्राहीम अल्काज़ी ने शेक्सपीयर के तीन महत्वपूर्ण नाटकों का मंचन किया। जिनमें *किंग लियर (1964), ओथेलो (1969) और जूलियस सीज़र (1992)* हैं। शेक्सपीयर की कृति अलग-अलग युगों के लोगों के मानवीय व्यवहार की झांकियां दिखाती हैं। नये-नये पहलू उजागर कराती है और साथ ही ऐसी मूलभूत सामग्री उपलब्ध कराती है, जिसकी मदद से समकालीन यथार्थ को समझने, समझाने की कोशिश की जा सके. शायद इसीलिए इब्राहीम अल्काज़ी ने शेक्सपीयर के नाटकों को मंचन के लिए चुना। जिसमें *किंग लियर* का अनुवाद एस मज़नून गोरखपुरी ने हिंदुस्तानी भाषा में किया और *ओथेलो* का उर्दू अनुवाद सज्जाद ज़हीर ने किया। इन दोनों नाटकों की मंच परियोजना इब्राहीम अल्काज़ी ने की थी. *किंग लियर* में लियर की भूमिका ओम शिवपुरी और गोनेरिल का

---

[11] Ebrahim Alkazi , On Theatre Education, *The Sunday Observer*, August 31, 1986.

चरित्र मीना विलियम्स और नरेंद्र तिवाना ने निभाया था. नाटक की विषय वस्तु लियर ऑफ़ ब्रिटेन की किंवदंती पर आधारित है, जो एक रोमन पूर्व मिथकीय राजा है. इस नाटक को खास तौर पर मनुष्य की पीड़ा और उसके संबंधों के गहन बोध के कारण रेखांकित किया जाता रहा है.

इब्राहीम अल्काज़ी द्वारा मंचित *ओथेलो* में डेसडिमोना का चरित्र उत्तरा बाओकर, नादिरा ज़हीर और वेद शर्मा ने निभाया था, जिसके बारे में नादिरा ज़हीर का कथन है कि अल्काज़ी ने एलिज़ाबेथियन शैली में *ओथेलो* का मंचन किया था. प्रत्येक कलाकार ने अपने चरित्र के साथ पूर्ण न्याय किया था. [12] इसके बाद अल्काज़ी की विशिष्ट नाट्य शैली उनके अन्य नाटकों में झलकती है, चाहे वह इब्राहीम अल्काज़ी द्वारा निर्देशित *सूर्यमुख (1971)* नाटक हो या *सुल्तान रज़िया (1972)*। जो उनके बाद के नाटकों के ब्रोशर के चित्रों का अध्ययन करने पर पता चलता है. [13] चौदह साल के बाद अल्काज़ी की जब वापसी हुई, तो उन्होंने शेक्सपीयर के *जूलियस सीज़र* का मंचन किया। जब *जूलियस*

---

[12] नादिरा ज़हीर से साक्षात्कार

[13] रंगयात्रा, पृष्ठ 98, 101.

सीज़र करने की बात इब्राहीम अल्काज़ी के सामने आयी, तो पहले अरविंद कुमार द्वारा *जूलियस सीज़र* से रूपांतरित *विक्रम सैंधव* के मंचन पर भी विचार हुआ, लेकिन अल्काज़ी रूपांतर के बजाय *जूलियस सीज़र* के यथावत अनुवाद को करने के इच्छुक थे, क्योंकि अल्काज़ी का ऐसा मानना था कि जूलियस सीज़र विश्व इतिहास और चेतना का एक अटूट हिस्सा है, अतः उसका रूपांतरण नहीं किया जाना चाहिए, क्योंकि यथावत रखने से भी उन तत्वों की प्रासंगिकता बनी रहती है| इस मत को अरविंद कुमार ने स्वीकार किया तथा वे इसका सीधा अनुवाद करने को तैयार हुए| लेकिन अल्काज़ी के *जूलियस सीज़र* में अभिनेत्रियों के लिए कोई खास भूमिका नहीं थी| जब महिला कलाकारों का एक ग्रुप इस संदर्भ में अल्काज़ी से मिला तो उनकी रचनात्मक उत्सुकता देख कर लोर्का कृत *द हाउस ऑफ़ बर्नाडा आला (दिन के अंधेरे,* जिसमें सारी महिला पात्र हैं*),* अभिनय करने का निर्णय लिया, जिससे रंगमंडल में किसी तरह का असंतोष न रहे. अल्काज़ी का मत था कि मैंने किसी महत्वाकांक्षा के तहत अथवा

अतिनाटकीयता दर्शाने के लिए एक साथ तीन प्रस्तुतियां हाथ में लीं, यह कहना गलत है. दोनों वर्गों को समान अवसर मिले. [14]

अल्काज़ी ने विलियम शेक्सपीयर की इस कालजयी त्रासदी को अपने समय के राजनीतिक हत्याकांडों (विशेषतः इंदिरा गांधी) के संदर्भ में प्रस्तुत किया और समकालीन राजनीति के इस रूपांतरण को अत्यंत प्रभावशाली ढंग से अरविंद कुमार ने रखा, जिसमें मूल रचना की काव्यात्मकता, नाटकीयता, प्रवाहमयता और अभिनयात्मकता के गुण पूरी सहजता से समा जाते हैं|

इस नाटक के प्रोडक्शन में कलाकारों की अहम भूमिका रही| खास कर जूलियस सीज़र, मार्कस ब्रूटस, कैसियस और मार्कस एंटनी की प्रमुख भूमिका में क्रमशः वल्लभ व्यास, रवि खानविलकर, रवि कौशल और अभिजीत लाहिड़ी ने अपने-अपने चरित्रों से पूरा न्याय किया और शेक्सपीयर के कथ्य गतिशीलता देते हुए अभिनय में उतारा| अल्काज़ी ने इस प्रोडक्शन में लगभग 25-30 कालाकारों से 82 से भी अधिक चरित्रों से काम चलाया|

---

[14] संडे मेल, 12.08.1992

खास कर भीड़ के दृश्य दिखाने के लिए थिएटरिकल भ्रम पैदा किया, जो उस समज अल्काज़ी जैसे महान निर्देशक ही कर पाते|

अल्काज़ी का यह प्रोडक्शन मूलतः निर्देशक प्रधान प्रद्रशन था और इसमें अभिनेताओं की सहज स्फूर्त रचनात्मकता को कम स्वतंत्रता दी गयी थी| अल्काज़ी ने बाह्य घटनाओं को प्रभावशाली दिखाने के बजाय मानवीय संबंधों की विडंबना और मानव मन एवं व्यवहार के अंतर्विरोधों को उद्घाटित तथा विश्लेषित करने पर अधिक ध्यान दिया| खास कर *जूलियस सीज़र* की प्रस्तुति में कार्य व्यापार की विस्फोटक ऊर्जा कम और भाव एवं विचार की उत्तेजक ऊष्मा अधिक दिखाई पड़ती है| सफलता भेद के बावज़ूद इस प्रस्तुति पर उनकी निर्भ्रांत, समग्र दृष्टि तकनीक निपुणता और कल्पनाशीलता के प्रत्यक्ष दर्शन होते हैं| यह हो सकता है कि चमत्कार की उम्मीद वाले समीक्षक प्रेक्षक एक हद तक इस प्रदर्शन से निराश भी हुए हों, किंतु, इसमें कोई संदेह नहीं कि "अल्काज़ी जैसे संपूर्णतावादी दिग्गज निर्देशक के साथ काम करके रंगमंडल की नयी पीढ़ी के

मौजूदा कलाकार रंगकर्म के प्रति निश्चय ही अधिक गंभीर, सचेत, अनुशासनप्रिय, अभिनय कुशल और रंग समृद्ध हुए होंगे।" [15]

हालांकि इस प्रोडक्शन में अल्काज़ी को नाटक से दूर रहना एक हद तक झलकता रहा। इसीलिए उनके आलोचकों ने भी यहां तक कह डाला कि 'इस प्रस्तुति में एक झोल दिखाई देता है। इसके बावज़ूद कि वह भारतीय रंगमंच के भीष्म पितामह हैं।'[16]

दूसरे आलोचकों का ने भी इसी तरह की राय प्रकट की है। रामगोपाल बजाज के अनुसार, 'तमाम तरह के उनके दावों और प्रयोगों के बावज़ूद उनकी नाट्य शैली में बहुत अंतर नहीं आ पाया है।[17]

लेकिन बहुत सारे आलोचकों ने इस नाटक की असफलता के बावज़ूद इसे सकारात्मक रूप में देखा जैसा कि हेमा सिंह कहती हैं, 'उन पर जो आरोप लगाये जा रहे हैं, उनमें कोई दम नहीं है। वे आज भी रंगकर्म से जुड़े हैं। उतार-चढ़ाव तो आते ही रहते हैं।'[18]

---

[15] अब भीतर की ओर मुड़े हैं अल्काजी, नवभारत टाइम्स, 19.01.1992

[16] नाट्य प्रशिक्षक एवं अल्काजी के शिष्य प्रसन्ना, इतिहास नहीं बना पाये.

[17] उन्हें अपने सिखाये लोगों पर भरोसा नहीं : रामगोपाल बजाज

[18] हम तो धनी हो गये : हेमा सिंह (20.1.92), दैनिक जागरण

कई आलोचक उनकी इस असफलता तक को अभिनेताओं की कमियों पर डालते हैं| जैसा कि नामवर सिंह मानते हैं :

> नाटक के संबंध में वे एक लयबद्ध शास्त्रीय पकड़ रखते हैं, जो कि उनके द्वारा चुने गये नाटकों के साथ एकदम सटीक बैठती है| उनकी निर्देशन शैली में फ़र्क तो आया है| यह अंतर इस कारण भी हो सकता है कि आज उन्हें अच्छे अभिनेता उपलब्ध नही हैं| [19]

अपने पुराने नाटकों की तरह और उसी कमोबेश उसी सिद्धांत पर अल्काज़ी ने *जूलियस सीज़र* की स्मारिका तैयार की| इसमें मंच की बारह सीढ़ियां और चार खंभे सीज़र महान के रोम की भव्यता को दर्शाते हैं| अभिनेता की तीव्र गतियों के लिए गतिमय स्थान प्रस्तुत करते हैं| नाटक के अर्थ का सवाल तो अपने समय के राजनैतिक हत्याकांडों के हमारे अनुभव यहां ऐतिहासिक घटनाओं की प्रासंगिकता पर तीखी रोशनी डालते हैं| [20]

समकालीन राजनेताओं की तरह इस नाटक में ब्रूटस और कैसियस का स्वभाव की अनिवार्य भव्यता व प्रकृति की संपूरणता

---

[19] Ibid.

[20] रंगयात्रा, राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, 2004, पृष्ठ-264

उनकी त्रासकारी दुर्बलता और गलत फ़ैसलों पर भारी है| उद्देश्य की एकतानता और बलवीरता में कैसियस हमें परवर्ती यूरोप के अन्य उतने ही महत्वपूर्ण इतिहास पुरुष की याद दिलाता है जितना भारतीय संदर्भ में इंदिरा गांधी का था| यहां पर कैसियस ब्रूटस के प्रेम के लिए तरसता है| उस प्रेम के लिए जो ब्रूटस के मन में सीज़र के लिए होता था और इसी प्रेम की कोशिश में ब्रूटस के गलत फ़ैसलों का बार-बार शिकार होता है और दुखांत नियति का भागीदार होता है| ठीक इसी तरह की राजनीतिक परिस्थितियां अल्काज़ी के समकालीन राजनीति को प्रभावित कर रही थीं| नाटक में जहां एक तरफ़ निजी पारस्परिक संबंधों की गहराई है तो दूसरी तरफ़ राजनीतिक ईर्ष्या| कमोबेश *जूलियस सीज़र का* प्रोडक्शन अल्काज़ी के परंपरागत इतिहास के स्मारकवाद पर आधारित था, जिसमें स्मारक और इतिहास वर्तमान को परिभाषित कर रहे थे|

Dutt & Sova Sen in Macbeth, 1954.

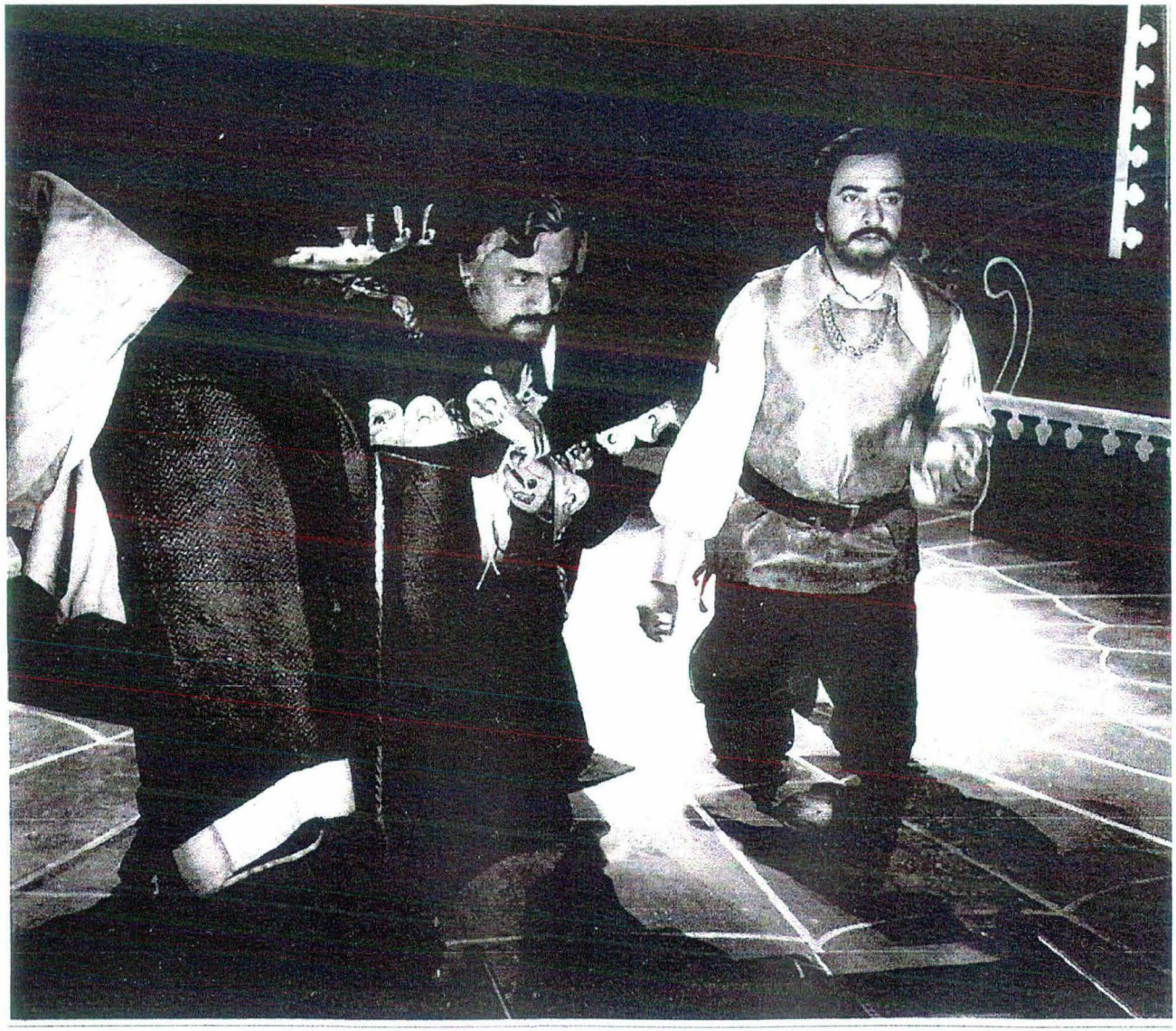

Dutt & Pratap Roy in Othello.

Bishnupriya Dutt & Gautam Ghosh in Othello.

Bishnupriya Dutt & Gautam Ghosh in Othello.

A scene from Dutt's Production of Macbeth (1954) in Bengali.

A scene from Dutt's Production of Macbeth (1954) in Bengali.

अध्याय-३

उत्पल दत्त का शेक्सपीयर : शेक्सपीयर के नाटकों में सामाजिक चेतना की स्थापना

3.1 प्रस्तावना

उत्पल दत्त और उनके द्वारा की गयी शेक्सपीयर के प्रदर्शित नाटकों की व्याख्या को विभिन्न प्रस्थान बिंदुओं से देखा जा सकता है। एक तरफ़ जहां यह रंगमंच की दो विभूतियों के आपसी लगाव को दिखाता है, वहीं दूसरी तरफ़ देश-काल के कारण उत्पन्न हुई दूरियों को भी रेखांकित करता है। यद्यपि हमारे पास शेक्सपीयर के व्यक्तिगत जीवन के बारे में पर्याप्त तथ्य नहीं हैं, लेकिन सौभाग्य से हमारे पास उत्पल दत्त के जीवन और कार्यों के बारे में पर्याप्त सामग्री उपलब्ध है। हालांकि दूसरे संदर्भ में यह उतना महत्वपूर्ण

भी नहीं है, क्योंकि दोनों के ऐतिहासिक और सांस्कृतिक बिंदु भिन्न रहे हैं।

वर्तमान अध्याय में, उत्पल दत्त के जीवन वृत्त और कार्यों तथा साथ ही शेक्सपीयर के नाटकों से उनके लगाव का विस्तृत ब्योरा दिया गया है। उत्पल दत्त का नाट्य संसार और उनकी वृहत्त रचनात्मक गतिविधियां उनकी क्रांतिकारी विचारधारा के इर्द-गिर्द घूमती हैं।[21] उनके द्वारा किये गये शेक्सपीयर के रूपांतरणों को इन तीनों आयामों के अंतर्संबंधों में देखने की ज़रूरत है, जो अब तक नहीं किया जा सका है। ये तीन आयाम हैं : उत्पल दत्त का व्यक्तिगत जीवन, उनका रचनात्मक संसार और शेक्सपीयर से उनका विशिष्ट लगाव। उप भागों में विभाजित इस अध्याय के पहले भाग में उत्पल दत्त के जीवन और उनके कार्यों के जीवनीपरक ब्योरे समावेशित किये गये हैं। दूसरे भाग में उनकी क्रांतिकारी राजनीति और वामपंथ के इर्द-गिर्द व्याप्त व्यापक राजनीति से

---

[21] उत्पल दत (1929-1993) के बारे में, उत्पल दत्त शुरुआती दौर में भारत की कम्युनिस्ट पार्टी से जुड़े रहे और बाद में इप्टा की स्थापना के समय उसके संस्थापक सदस्यों में से एक थे। भारत की कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्सवादी) के बनने के बाद वे उसमें शामिल हो गये। हालांकि बाद के दिनों में वे किसी भी राजनीतिक पार्टी के मंच पर खुल कर नहीं आये, लेकिन एक प्रगतिशील वामपंथ के लिए आजीवन उनकी प्रतिबद्धता बनी रही।

उनके जुड़ाव को देखने की कोशिश की गयी है। तीसरा भाग, जो पहले और, दूसरे के प्रभाव में देखा जा सकता है, सामान्यतः शेक्सपीयर की रचनाओं के और विशेषकर उनके नाटकों में सामाजिक चेतना के साथ दत्त के द्वंद्वात्मक संबंधों को रेखांकित करता है।[22]

व्यापक तौर पर इस अध्याय में शेक्सपीयर को लेकर उत्पल दत्त की अवधारणाओं से संबंधित समस्त प्रमुख तथ्यों-विवरणों को समाहित करने की कोशिश की गयी है।

3.2 एक क्रांतिकारी का जीवन और कार्य

सन 1929 में बारिसाल (वर्तमान में बांग्लादेश में) में जन्मे उत्पल दत्त नाटककार, निर्देशक, अभिनेता और एक वामपंथी कार्यकर्ता थे, जो भारत में आज के दौर के राजनीतिक रंगकर्मियों के लिए भी एक आदर्श बने हुए हैं। दत्त ने एक अत्यंत संवेदनशील और तेजी

---

[22] Utpal Dutt, Synopsis of "Shakespearear Samaj-Chetona"[Shakespeare's Social Connciousness], Sahitya Shodh Sansathan, Kolkata, File No। 187/320

से परिवर्तित होते राजनीतिक परिदृश्य के प्रत्येक मोड़ पर बार-बार राजनीतिक नेतृत्व के साथ अपने संबंधों को परिभाषित करते हुए, अनेक शक्तियों के साथ उग्र झड़पों में जाते हुए, भूमिगत होते हुए और इस प्रक्रिया में जेल जाते हुए राजनीतिक संदेशों के साथ क्रांतिकारी रंगमंच को जनता के व्यापक हिस्से तक ले जाने की कोशिश की। सेंट जेवियर कालेज, कलकत्ता (अब कोलकाता) में अध्ययन के दौरान *रोमियो एंड जूलियट, मैकबेथ* और *रिचर्ड-III* के चुने हुए दृश्य करते हुए रंगमंच में उनकी रुचि विकसित हुई। शुरू के वर्षों में उनकी रुचि यूरोपीय रंगमंच में थी, लेकिन बाद में वे बंगाली रंगमंच से प्रभावित हुए और उसकी ओर उन्मुख हो गये। साम्यवादी राजनीति के प्रभाव में आने के बाद उन्होंने काम करने के लिए बांग्लाभाषी रंगमंच को चुना, क्योंकि उससे आम लोगों के बीच में आसानी से पहुंचा जा सकता था। उन्हीं दिनों उन्होंने *शेक्सपीरियन इंटरनेशनल थिएटर कंपनी* के साथ अनेक यात्राएं भी कीं।

इंडियन पीपुल्स थिएटर एसोशिएशन (इप्टा) की स्थापना में उत्पल दत्त ने एक महत्वपूर्ण भूमिका निभायी और कई जटिलताओं

और विवादों के बावजूद वे अपने जीवन के अंत तक *इप्टा* की संस्कृति के प्रति कमोबेश प्रतिबद्ध रहे। वास्तव में यह भी कहा जा सकता है कि *लिटिल थिएटर ग्रुप* की पूरी संकल्पना भी इप्टा आंदोलन से प्रभावित थी। हालांकि कुछ निजी कारणों से उत्पल दत्त इप्टा से दूर रहे।

हालांकि उत्पल दत्त की रुचि शेक्सपीरियन नाटकों में ज़्यादा थी, लेकिन ब्रेख्त के साथ उनकी बेहद महत्वपूर्ण समानता यह रही कि उन्होंने ब्रेख्त के महाकाव्य नाटक (एपिक थिएटर) का भारतीय माडल विकसित करने की कोशिश की, लेकिन दत्त मुख्यतः बंगाली सांस्कृतिक गतिविधियों तक सीमित थे। उन्होंने एपिक थिएटर की अवधारणा का उपयोग (जिसे उन्होंने एपिक थिएटर की ब्रेख्तीय अवधारणा से हासिल किया था) बहसों के लिए और भारतीय सामाजिक-राजनीतिक दशाओं में बदलाव के लिए किया। बाद के वर्षों में वे ग्रुप थिएटर आंदोलन के बेहद प्रभावशाली व्यक्तित्वों में से एक बन कर उभरे। अपने नाटकों की सृजनशीलता के साथ-साथ उन्होंने सत्यजित राय द्वारा निर्देशित फ़िल्म सहित अनेक बंगाली एवं हिंदी फ़िल्मों में भी काम किया। इन हिंदी फ़िल्मों में उत्पल

दत्त एक बेहद मशहूर हास्य अभिनेता के रूप में उभरे, जिनमें से सर्वाधिक उल्लेखनीय फ़िल्में हैं, *गुड्डी, गोलमाल, नरम, शौकीन* और *रंग-बिरंगी* । उन्हें *गोलमाल, नरम-गरम* और *रंग-बिरंगी* में अपने सशक्त अभिनय के लिए फ़िल्मफ़ेयर का सर्वश्रेष्ठ हास्य अभिनेता का सम्मान भी हासिल हुआ। वे बंगाल में एक बेहद गंभीर नाट्यकार और निर्देशक थे और इसके समांतर बेजोड़ हास्य भूमिकाएं करने के बीच उन्होंने सफलतापूर्वक संतुलन बनाये रखा।

लेकिन जो बात उत्पल दत्त को अन्य नाट्यकर्मियों से विशिष्ट बनाती है, वह उनके नाटकों का राजनीति से स्पष्ट संबंध और उन नाटकों का सामाजिक-राजनीतिक जगत में व्यापक प्रभाव है। इसका सबसे बड़ा उदाहरण नक्सलबाड़ी आंदोलन के दौरान उनके द्वारा मंचित किया गया सुप्रसिद्ध नाटक *तीर (Teer)* और नौसेना विद्रोह पर आधारित नाटक *कल्लोल* है।

उस समय की वामपंथी राजनीति में उभरी कुछ समस्याओं के बावजूद उत्पल दत्त आजीवन मार्क्सवादी और भारत की कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्सवादी) के सक्रिय समर्थक बने रहे। अपने जीवनकाल में उन्होंने कई बार लोकरूपों अथवा लोकतत्वों को

अपनाते हुए अनेक नुक्कड़ और मंच नाटकों की प्रस्तुति की। उनके सर्वाधिक ख्यातिप्राप्त नाटकों में पिगमेलियन पर आधारित *टिनेर तलवार,* 1942 के नौसैनिक विद्रोह पर आधारित *कल्लोल* और 1967 के नक्सलवादी आंदोलन पर आधारित *तीरू मीर* थे।[23]

19 अगस्त, 1993 को उत्पल दत्त के निधन को इस साल सोलह वर्ष पूरे हो जायेंगे। अब भी बहुत कम लोग देश में रंगमंच के इतिहास में और उससे भी कम लोग हिंदी और बंगाली, मुख्यधारा और वैकल्पिक सिनेमा को उनके योगदान के बारे में मालूम होगा। दत्त अपने कैरियर की शुरुआत एक स्कूली छात्र के रूप में, शेक्सपीयर के नाटक *रिचर्ड-III* में एक मंच अभिनेता की भूमिका के बतौर करते हुए शेक्सपीयर के नाटकों को मंच की भौगोलिक परिधियों के पार ले गये थे। अगस्तो बाउल[24] की तरह दत्त ने भी अनुभव किया कि पूरा रंगमंच राजनीतिक है। वे इस पर जोर देते कभी नहीं थके कि थिएटर कभी भी अर्थपूर्ण नहीं हो सकता, यदि वह राजनीतिक विशिष्टता से सरोकार नहीं रखता,

---

[23] उत्पल दत्त द्वारा रूपांतरित नाटकों के संपूर्ण विवरण के लिए विवरणिका देखें।

[24] आगस्टो बाल लैटिन अमेरिका के प्रसिद्ध रंगकर्मी थे, जिन्होंने *थिएटर आफ़ द आप्रेस्ड* के सिद्धांत को प्रतिपादित किया और इसी नाम से एक किताब भी लिखी है।

जिसके भीतर वह मनुष्य जगत के बीच के और उनके भीतर के अस्थिर और उतार-चढ़ावोंभरे द्वंद्वों की बात करता है।

उनके चालीस वर्षों के फ़िल्मी कैरियर में सौ से अधिक फ़िल्में हैं। जिनमें उनके द्वारा निभाये गये चरित्र एवं अभिनय का एक व्यापक विस्तार है, जो मृणाल सेन के *भुवन शोम (1969)* के एक सरल और ईमानदार सरकारी अधिकारी से शुरू होता है, सत्यजित राय के *आगंतुक (1991)* से होते हुए गौतम घोष की *पद्मा नदीर मांझी* (1993) तक पहुंचता है। हिंदी की मुख्यधारा की फ़िल्मों में उनके द्वारा निभायी गयी भूमिकाओं में हास्य और नकारात्मक चरित्र के तत्वों का अच्छा समावेश देखने को मिलता है। उन्होंने दर्शकों का *नरम-गरम* में स्वरूप संपत के सौंदर्य से पीड़ित तथा प्रेम से वंचित भवानी शंकर वाजपेयी के रूप में मनोरंजन किया और दर्शकों ने शक्ति सामंत के *अमानुष* में अप्रिय खलनायक के रूप में उनसे घृणा की। उन्होंने सत्यजित राय की *हीरक राजार देशे* में एक क्रूर तानाशाह की भूमिका निभायी, जबकि दुलाल गुहा की *दो अनजाने* में एक खुशनुमा मेहमान की भूमिका

में उन्होंने बांग्लामिश्रित उर्दू का प्रयोग दर्शकों को हंसाने के लिए किया।

दृश्य चित्र मुझ पर कोई प्रभाव नहीं छोड़ पाये हैं, न तो मेरे बचपन के दिनों में और न जब मैं बड़ा हुआ, एक बार उन्होंने कहा था, जब थिएटर में पहले से ही काफी कुछ कर चुकने के बाद उनसे सिनेमा की ओर जाने के बारे में पूछा गया। सिनेमा में उनका प्रवेश सोच-समझ कर किये गये चयन से अधिक सांयोगिक था। जब ज्योफ़्री केंडाल के नेतृत्ववाले *शेक्सपीयरवाला* ने भारत छोड़ा, उत्पल दत्त की अंगरेज़ी नाटकों की यात्रा जारी रही। एक बार जब वे *ओथेलो* प्रस्तुत कर रहे थे, प्रख्यात फ़िल्मकार मधु बोस प्रस्तुति देखने आये। वे इंडो-एंग्लिअन कवि माइकेल मधुसूदन दत्त के जीवन पर आधारित फ़िल्म के लिए मुख्य अभिनेता की तलाश कर रहे थे।, दत्त द्वारा की गयी *ओथेलो* की व्याख्या से प्रभावित बोस ने उन्हें अभिनय के लिए प्रस्ताव दिया। दत्त अपने कैनवास को और व्यापक तथा विस्तृत करने के अवसरों की तलाश में थे, इसलिए उन्होंने प्रसन्नता से इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया। यह हिंदी और बंगाली फ़िल्मों की बड़ी संख्या से समृद्ध एक लंबे

कैरियर की शुरुआत थी, जबकि स्टेज अभी भी उनका पहला प्यार बना रहा और उनके *लिटिल थिएटर ग्रुप* ने गंभीर राजनीतिक रंगमंच के आंदोलन को जारी रखा। मृणाल सेन ने एक बार प्रशंसा में दत्त का ज़िक्र एक ऐसे अभिनेता के रूप में की थी, जो समान कौशल के साथ प्रौढ़ से लेकर हास्य भूमिकाएं तक कर सकते थे। जब उनसे पूछा गया कि वे कैसे *फ़रियाद* जैसी एक पूरी तरह व्यावसायिक मसाला सिनेमा से सत्यजित राय की *जय बाबा फेलूनाथ* जैसी फ़िल्म में काम कर लेते हैं, दत्त ने कहा, "मैंने अपने सोचने की क्षमता को बंद कर लेने, उसे स्विच कर लेने की तकनीक का विकास कर लिया। मैं एक बार शूटिंग खत्म हो जाने के बाद उन फ़िल्मों या किरदारों के नाम तक बता पाने में सक्षम नहीं होऊंगा, जिनमें मैंने काम किया है।"[25]

मुख्यधारा और वैकल्पिक सिनेमा की उनकी अनेक फ़िल्मों में मृणाल सेन द्वारा निर्देशित *भुवन शोम, एक अधूरी कहानी* और *कोरस*; सत्यजित राय द्वारा निर्देशित *आगंतुक, जन अरण्य, जय*

---

[25] James V Hatch, The Communist Theatre and Utpan Dutt, Calcutta : Sahitya Shodh Sansathan, File 187/65

बाबा फेलूनाथ और *हीरक राजार देशे*, गौतम घोष द्वारा निर्देशित *पद्मा नदीर मांझी*, जेम्स आइवरी द्वारा निर्देशित *बाम्बे टाकीज* और *शेक्सपीयरवाला*, ऋत्विक घटक द्वारा निर्देशित *जुक्ति ताक्को आर गप्पो*, हृशिकेष मुखर्जी द्वारा निर्देशित *गुड्डी*, बासु चटर्जी द्वारा निर्देशित *स्वामी* और *गोलमाल*, शक्ति सामंत द्वारा निर्देशित *अमानुष* और मधु बोस द्वारा निर्देशित *माइकेल मधुसूदन* कुछ यादगार फ़िल्में हैं। *अमानुष* में उनकी नकारात्मक भूमिका रंगयुक्तियों से बुनी गयी थी जो दर्शकों के बीच अत्यधिक लोकप्रिय रही। आगंतुक में उनके अभिनय के लिए उन्हें बंगाल फ़िल्म जर्नलिस्ट एसोसिएशन का 1992 का सर्वश्रेष्ठ अभिनेता के पुरस्कार से विभूषित किया गया।

उत्पल दत्त ने अपने कैरियर में कुछ अर्थपूर्ण फ़िल्मों का निर्देशन भी किया था, जिनमें एक मनोवैज्ञानिक थ्रिलर *मेघ* (1961), *झूम भंगार गान* (1965), *झोर* (1979), *बैसाखी मेघ* (1981), *मां* (1983) और *इनकलाब के बाद* (1984) शामिल हैं। इन फ़िल्मों में से किसी फ़िल्म को व्यावसायिक सफ़लता नहीं

मिली, लेकिन इसके बावजूद उनके अभिनय एवं निर्देशन नज़रंदाज़ नहीं किया जा सकता।

दत्त कोलोसस की तरह दिनोंदिन नाटक की दुनिया में आगे बढ़ते चले गये और एक से बढ़ कर एक नाटकों की प्रस्तुति करने के साथ ही एपिक थिएटर का विस्तृत सिद्धांत विकसित करने की कोशिश भी की, जिसके बारे में उत्साही नाट्यकर्मियों ने आशा की कि दूसरों के लिए एक प्रतिमान स्थापित करेगा। अपनी सभी प्रस्तुतियों में, जिनमें कुछ सांस रोक देनेवाली थीं। उत्पल दत्त ने जिसकी आकांक्षा की थी, वह उन्होंने पायी (उनके अपने शब्दों में) -"भारत के उथल-पुथल भरे इतिहास की पुनर्स्थापना, इसकी जनता की भौतिक परंपराओं की पुनर्स्थापना, महान विद्रोहियों और शहीदों की वीर गाथाओं को फिर-फिर से स्मरण करना।"[26]

मई, 1990 में लैंकेस्टर युनिवर्सिटी ने 'थिएटर एंड आइडियोलाजी' पर एक सेमिनार का आयोजन किया, जहां दत्त ने भारत का प्रतिनिधित्व किया एवं अपनी प्रस्तुति में, थिएटर और

---

[26] William Ash, A Dialogue on the Theatre with Utpal Dutt, *Epic Theatre, March-June 1997, pp। 46-50।*

राजनीति के प्रतीकात्मक रिश्तों को स्थापित किया और धर्म की उत्पीड़क प्रकृति के अपर्याप्त चित्रण पर दुख भी जताया। उन्होंने आधार (Base) और ऊपरी संरचना (Superstructure) के मध्य एक सूत्र को स्थापित करने की कोशिश की और प्राचीन भारत में मौज़ूद ऊपरी संरचना को रेखांकित किया था।

उत्पल दत्त का जीवन कई तरह के विवादों से जुड़ा रहा और कभी-कभी उनके द्वारा दिये गये सार्वजनिक वक्तव्यों ने उनके लिए समस्या खड़ी कर दी। दत्त 27 दिसंबर, 1965 को प्रिवेंटिव डिटेंशन एक्ट के तहत पश्चिम बंगाल सरकार द्वारा ज़ारी किये गये वारंट पर गिरफ़्तार कर लिये गये। लेकिन वे जल्दी ही ज़मानत पर छोड़ दिये गये, क्योंकि वे शशि कपूर की *गुरु* की मुख्य भूमिका की शूटिंग में व्यस्त थे। वे इस तथ्य को खुले तौर पर स्वीकार करते थे कि फ़िल्मों में उनका कैरियर उनके थिएटर ग्रुप के लिए धन की कमी को पूरा करने की ज़रूरतों से उपजा है। उनके अनेक सहधर्मियों ने इस बयान का मज़ाक उड़ाया लेकिन वे दृढ़ता से थिएटर के प्रति अपनी प्रतिबद्धता के साथ खड़े रहे, उतना ही जितना उन्होंने फ़िल्मों के प्रति अपनी प्रतिबद्धता के लिए किया जो

उनकी मज़बूत मार्क्सवादी सिद्धांतों के खिलाफ़ जाती थी। वे एक के बाद दूसरा प्रयोग करते रहे न कि राजनीति, साहित्य और रंगमंच के विलय की अपनी धारणा से एक बार में दूर हो गये। "मैं इसकी वकालत नहीं करता कि ये चीज़ें या तो काले या सफ़ेद में चित्रित की जायें। जीवन में ऐसी चीज़ें काले या सफ़ेद में नहीं, केवल धूसर में होती हैं।"[27]

3.3 क्रांतिकारी नाटक और दत्त

"दत्त कौन हैं?" द न्यूयार्क टाइम्स के एक संपादक ने पूछा। अधिकतर कलाकार भी यही सवाल पूछेंगे। सिर्फ़ यह कहना कि वे भारत में शेक्सपीयर के सबसे बड़े विद्वान, अभिनेता और निर्माता थे, उनके साथ न्याय नहीं होगा। कोई याद करेगा कि उन्होंने जेम्स आइवरी के *शेक्सपीयरवाला* में रजत की या आइवरी की

---

[27] Ibid। 46-50।

हालिया फ़िल्म *द गुरु* में गुरु की भूमिकाएं निभायी थीं।[28]

भारत में दत्त की पहचान एक विवादास्पद लेकिन प्रतिभावान और रंगमंच की राजनीतिक शख्सियत के रूप में है। हालांकि दत्त पार्टी के सदस्य थे या नहीं, यह उसी तरह विवादित रहा है, जैसे कि ब्रेख्त के बारे में 1940 के दशक में था। दत्त लिटिल थिएटर ग्रुप के साथ जुड़े हुए एक निर्देशक, नाटककार और अभिनेता थे। उत्पल दत्त ,बांग्ला रंगमंच में शेक्सपीयर के साथ प्रयोग करनेवाले अग्रणी अनुवादक और निर्देशक थे। उन्होंने बार-बार यह साबित किया कि उनमें शेक्सपीयर के साथ प्रयोग करने की अपार क्षमता है। हालांकि ब्रेख्त और शेक्सपीयर दत्त के लिटिल थिएटर ग्रुप के दो प्रतिमान थे, लेकिन दत्त की ब्रेख्त के नाटकों के मंचन में अनेक कारणों से कोई दिलचस्पी नहीं थी। दरअसल शेक्सपीयर, दत्त की पहली खोज थे। सेंट ज़ेवियर में अध्ययन के दौरान उन्होंने शेक्सपीयर ट्रेवलिंग कंपनी के प्रदर्शन देखे और उससे जुड़े और *शेक्सपीयरवाला* में काम किया। बाद में उन्होंने बांग्ला सीखी और

---

[28] James V Hatch, The Communist Theatre and Utpal Dutt, Calcutt, India, 187/661

बांग्ला में ही नाटक करने का फ़ैसला किया।[29] यद्यपि जहां तक अभिनय का सवाल था, उनके राजनीतिक प्रतिद्वंद्वियों ने भी यह स्वीकार किया कि वे एक महान अभिनेता, निर्देशक एवं कलाकर्मी थे... यदि उन्होंने सिर्फ़ वे उपदेशात्मक प्रचारपूर्ण नाटक नहीं लिखे होते।

उस दौर के अनेक कारणों में कलकत्ता में एक सांस्कृतिक माहौल भी था और नाटक के संदर्भ में तो यह कहा ही जा सकता है कि कलकत्ता भारत की सांस्कृतिक गतिविधियों का महत्वपूर्ण केंद्र था। इसलिए इसकी तुलना बहुत लोग न्यूयार्क से करते हैं। कलकत्ता, विश्व के सबसे बड़े लोकतंत्र का अकेला शहर था, जो पेशेवर थिएटर का समर्थन करता था, जहां हर रात एक नया नाटक देख सकना संभव था, जहां भूखे कवि गली के नुक्कड़ों पर कविता सुनाया करते थे। ऐसा शहर, जहां गुरिल्ला थिएटर लोगों के रेल भाड़े से लेकर राशन के चावल की ठगी तक की बात करता था। नाट्यसमीक्षक चटर्जी दावा करते हैं कि उस समय कलकत्ता में 1500 टैक्स अदा करनेवाले पंजीकृत नाट्य समूह थे। यदि उनमें

---

[29] । जिसके बारे में उनके मित्रों ने घोषणा की थी कि वे ठीक से नहीं बोल पाते हैं।

से 1200 निष्क्रिय भी थे, तब भी कलकत्ता में रंगमंच भलीभांति फलफूल रहा था और उसकी दशा अच्छी रही होगी।[30]

जहां तक उत्पल दत्त द्वारा किये गये नाटकों के प्रोडक्शन का सवाल है, *तीर* नक्सलबाड़ी में किसान विद्रोह के बारे में एक जीवंत प्रस्तुति थी। विद्रोह वसंत में शुरू हुआ, नाटक अगले वसंत तक मंच पर था। तब संगठक मार्क्स, लेनिन और माओ का लेखन लेकर आये। किसानों ने खुद को संघर्ष के लिए प्रशिक्षित करना शुरू किया। वे बंदूकों के बारे में बहुत नहीं जानते थे, उन्हें अपने तीर-धनुषों पर अधिक भरोसा था। अंततः उन्होंने चावल की गाड़ी पर हमला किया। सफलता से उत्साहित उन्होंने ज़मींदारों का खात्मा करना शुरू कर दिया और उन्हें भाग जाने की अनुमति दी गयी। यह उल्लेखनीय है कि लोकगीत और संगीत प्रोडक्शन के नियमित और अभिन्न तत्व थे। कभी सजीव (मंच पर नगाड़ा), कभी पृष्ठभूमि, कभी पुराने सोप ओपेरा गायकों की तरह इस्तेमाल, ...संभवतः, रेडियो या मूक फ़िल्मों से अपनायी गयी भारत में जन नाट्य में बहुत बार प्रयोग में लायी गयी युक्ति है।

---

[30] James V Hatch, The Communist Theatre and Utpal Dutt, Calcutt, India, 187/661

यह नाटक कहीं-न-कहीं भारत की कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्सवादी) [माकपा] की कार्यशैली की भी एक आलोचना थी। इस नाटक के लिए दत्त ने पुलिस एंबुश और गांव में महिलाओं और बच्चों के कत्लेआम के बारे में गवाहों और अखबारी रिपोर्टों से तथ्य इकट्ठा किये।

इसी नाटक के दौरान उत्पल दत्त गिरफ़्तार हुए और जब तक वे जेल से बाहर आते, पूरे कलकत्ता में नक्सलवादी आंदोलन की हवा बह रही थी। जिसके निशाने पर माकपा भी थी। तब नक्सलवादी आंदोलन ने एक भयावह स्थिति पैदा कर दी थी और उनके प्रेस ने माकपा को फ़ासीवादी का दर्जा दे दिया था।[31] इसमें दत्त अपने पक्ष को लेकर ऊहापोह की स्थिति में थे और उनकी बहसें माकपाइयों और नक्सलवादियों के बीच में चल रही थीं। अंततः उन्होंने माकपाइयों का पक्ष लिया और अपने नाटक को मंच से वापस ले लिया। हालांकि चारु मजूमदार से बात के दौरान मजूमदार ने उन्हें आश्वासन दिया था कि न तो उनका संगठन उनके नाटक के बारे में कुछ कहेगा और न ही कोई आलोचना

---

[31] | Utpal Dutt, Towards a revolutionary theatre (Calcutta : Seagull books, 2009) p| 98

करेगा। लेंकिन दत्त को मानें तो नक्सलवादियों ने उनके साथ-साथ असीत और नेगी की हत्या की धमकी दे दी थी और बहुत सारी पत्रिकाओं में दत्त द्वारा नाटक को वापस लिये जाने के निर्णय की जम कर भर्त्सना की गयी। यही कारण था कि दत्त के अगले नाटक का भी नक्सलवादियों ने जम कर विरोध किया।[32] यद्यपि उनके आलोचकों की मानें तो दत्त का यह कदम एक सोची-समझी समझौतावादी राजनीति का नतीज़ा था।

उत्पल दत्त एक बड़े दर्शक वर्ग तक पहुंचने की कोशिश कर रहे थे। उनके नाटक वस्तुतः मेलोड्रामा पर आधारित था, जो अन्य भारतीय रंगमंच की तरह पारसी नाटक से भी प्रभावित था। जब मैं ने उनके नाटक *वियतनाम* में लड़की की विदीर्ण छाती देखी, मैंने अपना सिर अविश्वास से झटक दिया। लेकिन जब मैंने एक पुस्तक में लड़की के फोटोग्राफ देखे और पढ़ा कि किस तरह पुलिस ने उन्हें चीर-फाड़ डाला था, तो मुझे उसे स्वीकार करने में कोई दिक्कत नहीं हुई। कौन विश्वास करेगा कि एक अमेरिकी लड़का लंपटता से लड़की की छाती काट सकता है? एशियन थिएटर में

---

[32] । Ibid। Pp। 97-108

यह कोई रंगमंचीय समस्या नहीं हो सकती है, क्योंकि इसका पूरा स्वरूप ही नाट्यधर्मिता पर आधारित है, जो यथार्थवादी नाटक से अलग है, चूंकि दत्त ने अपने नाटक में पारंपरिक नाटकीय तत्वों का भरपूर इस्तेमाल किया। इसलिए नाट्यधर्मी तत्वों का आना लाज़िमी हो जाता है।

3.4 उत्पल दत्त का शेक्सपीयर प्रेम

उत्पल दत्त ने अपनी प्रसिद्ध रचना social consusciousness in Shakespeare's plays में इस बात को पूरे बल से इस बात को सिद्ध करने की कोशिश की है कि किस प्रकार से शेक्सपीयर के नाटकों में एक सुदृढ़ सामाजिक चेतना है। इस पुस्तक की प्रस्तावना में इस नज़रिये की आलोचना की गयी है कि शेक्सपीयर का अपना कोई सामाजिक दृष्टिकोण नहीं था। दत्त ने डॉ जानसन से लेकर इयान कोट, रेबेका वेस्ट, राबर्ट साइ, ब्लैकमोर, पीटर अलेक्ज़ेंडर, जान इ्ब्ल्यू ड्रोपर और होरोवित्ज़ सहित लगभग सत्तर लेखकों की आलोचनाओं पर अपनी आलोचना प्रस्तुत की है। उन्होंने यह दलील दी कि शेक्सपीयर के नाटकों में खास कर

उनकी पारिवारिक संरचनाओं में बार-बार बेटियां अपनी पारिवारिक परंपराओं के विरुद्ध जाती हैं और एक सामाजिक संरचना में एक विद्रोही परंपरा को जन्म देती हैं। उदाहरण के रूप में इमोजेन, जेसिका, एड्रीना, डेस्डेमोनिया, जूलियट, हर्मिया आदि द्वारा पिताओं के अन्याय के खिलाफ़ विद्रोह की प्रवृत्ति दिखती है। इस आधार पर उत्पल दत्त ने दावा किया कि स्त्रियों के अधिकारों पर शेक्सपीयर का नज़रिया अपने समय से आगे का था। कमोबेश ये बातें पूंजीपति वर्ग और सामंती वर्ग के संदर्भ में लागू होती हैं।

चूंकि उत्पल दत्त सारी संरचनाओं को मार्क्सवादी दृष्टिकोण से देखते थे, और उस विचारधारा के आधार पर हम कह सकते हैं कि किसी समाज में एक खास मंजिल में सिद्धांतों की ऊपरी संरचना उस समाज के उत्पादन संबंधों के आधार पर विकसित होती है। इस तरह, शेक्सपीयर का अध्ययन अनिवार्यतः उनके समय के समाज के साथ उनके घनिष्ठ संबंधों के तहत ही किया जाना चाहिए। लेकिन इसके दूसरे पहलू भी हैं। जहां इस बात को बल मिलता है कि साहित्य और कला सिर्फ़ समाज के दर्पण नहीं होते, समाज को एक नयी दिशा भी प्रदान करते हैं। शेक्सपीयर के संदर्भ

में दूसरा पहलू ज़्यादा महत्वपूर्ण हो जाता है। इसके बाद उन्होंने दिखाया कि लूनाचार्स्की, स्मिर्नोव और मोर्गोव जैसे यांत्रिक भौतिकवादी किस तरह इस बात की दलील देते हैं कि शेक्सपीयर जर्जर क्रांतिकारी बुर्जुआजी का प्रतिनिधित्व करते थे।

उत्पल दत्त ने साबित करने की कोशिश की कि (1) उपलब्ध लिखित प्रमाण इस अवधारणा का खंडन करते हैं कि शेक्सपीयर उभरते वर्ग के विरोध में थे, और (2) शेक्सपीयर का नाटक उन विचारों का पता लगाने में असफल रहता है और यांत्रिक तौर पर अकेले उत्पादक शक्तियों पर निर्भर रहता है। यह उनकी बहस का विषय रहा है और उन्होंने इसे एंगेल्स और मार्क्स के अनगिनत उद्धरण देकर और मज़बूत किया कि द्वंद्वात्मक भौतिकवाद उत्पादक शक्तियों पर विचारों के महत्व और उन शक्तियों पर इसके प्रभाव पर भी ज़ोर देता है।[33]

इसके बाद वे इसकी विवेचना करते हैं कि अनिसिमोव, ट्रोंत्ज़ मेहरिन और ऑर्थर सेवेल के सिद्धांत उभरते हुए क्रांतिकारी वर्ग का समर्थन नहीं कर पाते, जिसका अर्थ खुद ब खुद प्रतिक्रियावादी

---

[33] Utpal Dutt, *Shakespearearer Samaj-Chetona,* Natya Shodh Sansthan, File No-187/3201

सामंती वर्गों का समर्थन करना है। यह दिखाने के लिए कि शेक्सपीयर के यहां किस तरह धर्म और जीवन के तथाकथिक सामंती आचारों से पूर्ण और अखंडनीय विलगाव है, उत्पल दत्त ने ऐतिहासिक क्रम में नाटकों से इसके लिखित प्रमाण प्रस्तुत करते हैं। इसके लिए उन्होंने सर्वांतीज़, दा विंसी और एल ग्रीको के साथ-साथ बालज़ाक, फ़्लेबर्ट, टाल्सटाय और डिकेंस पर भी चर्चा की। उन्होंने इसके आधार पर यह दिखाने की कोशिश की कि यह किसी व्यक्ति के लिए संभव है कि वह मानसिक तौर पर दोनों प्रभुत्वशाली वर्गों से, यदि वे दोनों वर्ग शासक वर्ग से आते हैं, खुद को अलग कर सकता है। उत्पल दत्त के अनुसार,

> मार्क्स का यह मतलब कभी नहीं था कि उनका सिद्धांत पूरी तरह भौतिक शक्तियों के आधार पर ही लागू होगा, बल्कि इस आधार पर भी लागू होगा कि कौन वर्ग सत्ता में हैं और कौन वर्ग उत्पीड़ित है।[34]

उत्पल दत्त ने मार्क्स और गोर्की को उद्धृत करते हुए यह साबित करने की कोशिश की कि किस तरह कला एवं साहित्य

---

[34] Ibid।

अपने समय के शासक वर्ग से स्वाधीन रह सकते हैं। इस आधार पर वे इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि शेक्सपीयर ने, अपने समय के किसी भी नाटककार की तरह, जिन्होंने दर्शकों के लिए नाटक लिखे, दृढ़ता से जनता के विचार लिये न कि बुर्जुआ या सामंती - शासक वर्ग के।

उत्पल दत्त इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि वे विचार जो आम तौर पर एलिज़ाबेथ के दौर के इंगलैंड के बताये जाते हैं, अनिवार्यतः शासक वर्ग के विचार थे। उनके अनुसार जनता के विचार और सोच को अलग हट कर देखे जाने की ज़रूरत है। एक अन्य परिचर्चा में उन्होंने बताया कि शेक्सपीयर के काल में इंग्लैंड में बुर्जुआ और अभिजात वर्ग आपस में नज़दीकी से जुड़े हुए थे, इसलिए जनता इन दोनों में कोई अंतर करके नहीं देखती थी। संभवतः शेक्सपीयर भी उन्हें अलग करके नहीं देख पाये होंगे।

शेक्सपीयर द्वारा अंगरेज़ धर्मवेत्ताओं (पादरियों) की तुलना में नंगे पांव भिक्षुओं का समर्थन करना एक वर्ग चेतना का भी परिचायक है। दत्त इस निष्कर्ष पर भी पहुंचे कि शेक्सपीयर की

सहानुभूति मुख्यतः कैथोलिक मत के साथ थी और कुछ हद तक नास्तिक होने के बजाय वे पूरी तरह एक ईसाई थे।

दत्त पाल सीगल, जेए ब्रेयंट और विर्जिल ह्वाइटकर जैसे आधुनिक अमेरिकी विद्वानों के साथ सहमत थे कि शेक्सपीयर के नाटकों में मौजूद ईसाई रूपकों के तत्व अध्ययन के महत्वपूर्ण क्षेत्र हैं और यह कि ईसाई व्यक्तित्वों का चित्रण उनके अधिकतर कामों में दिखता है। उत्पल दत्त ने "विंटर्स टेल" को पूरे तौर पर ईसाई सत्य के प्रारूपिक प्रतिबिंब के बतौर लिया।

दत्त ने अपने अध्ययन के आधार पर यह अनुभव किया कि पूंजीवादी सभ्यता शेक्सपीयर का दुरुपयोग कर रही है। इसलिए पूंजीपतियों ने जान-बूझ कर शेक्सपीयर के महत्व को कम करके आंका। इसलिए भी शायद पूंजीवादी सभ्यता यह स्वीकार करने से कतराती रही कि शेक्सपीयर हमेशा उसकी सामाजिक व्यवस्था के एक बड़े शत्रु रहे हैं। दत्त ने पाया कि शेक्सपीयर के नायकों, उनके नाटकों की कहानी, उनकी पूर्ण सघनता, ये सब बहुत क्रांतिकारी हैं- उनके पात्र किसी श्रेणी में नहीं आते और किसी तर्क को नहीं मानते। दूसरी तरफ़ तर्क को स्थापित करने के लिए, पश्चिमी देश,

खासकर पश्चिमी यूरोप और अमेरिका बहुत मेहनत कर रहे हैं! अगर कोई पात्र तर्क से थोड़ा भी विचलित होता है, तो वे उसके पूर्वजों को उठाते हैं। नाट्यालेख, जो कभी भी तर्क के नज़दीक नहीं होते वे खुद को ही तर्क और दलील बना देने की कोशिश करते हैं। दत्त ने मेन्कन को समय-समय पर उद्धृत किया है, जिन्होंने लिखा है कि 'इब्सन बेहद शालीन और पूंजीवादी भलेमानुस और सामाजिक विद्वान आदि थे और अपने बेटे और पत्नी के साथ उन्होंने एक खुशहाल जीवन व्यतीत किया। उनके समकालीन समय में इब्सन के जीवन के बारे में कोई नहीं जानता था, न तो यूरोपीय और न अमेरिकी ही।' मेन्कन के पास इस सब का विवरण है। आज हम यह जानते हैं कि इब्सन के बारे में जो कहा जाता है, वे वैसे नहीं थे। इब्सन का अपना जीवन बेहद दरिद्रता भरा था। असल में वे समाज के लिए एक खतरा थे। इस प्रकार इब्सन को सामाजिक अनुशासन का एक प्रतिनिधि बनाने की पूंजीवादी आलोचकों की लंबे समय से चली आ रही इच्छा रही है। इसकी तुलना में शेक्सपीयर ने कभी अपने समाज के अनुशासन का पालन नहीं किया। इस कारण से उनके दुख और गुस्से का अंत

नहीं है। आज एक बार फिर से पूंजीवाद उभर रहा है और अपनी उस पुरानी धारणा का प्रचार कर रहा है कि शेक्सपीयर को नाटकों की समझ नहीं थी। इसके अनुसार, शेक्सपीयर एक गंवार और गैर अनुशासित नाटककार थे। अमेरिका में इस विचार ने काफी जोर-शोर से प्रचार भी किया गया और वाल्तेयर के इस कथन को भी समर्थन मिला कि शेक्सपीयर एक बर्बर थे। अतः दत्त ने इस पर बहस की कि विलियम शेक्सपीयर को क्रमिक तौर पर पदच्युत करने की कोशिश की जाती रही है और उनकी यह कोशिश पाठकों के बीच सफल भी रही है।

उत्पल दत्त की इस व्याख्या के विरुद्ध बांग्ला रंगमंच के एक महत्वपूर्ण समीक्षक धरणी घोष ने दो प्रश्न प्रस्तुत किये। पहला, दत्त ने किस आधार पर कहा कि पश्चिमी शहरों, विशेषकर अमेरिका में यह अवधारणा मज़बूत हो रही है कि शेक्सपीयर बर्बर थे, जो वाल्तेयर द्वारा नहीं बल्कि बेन जानसन द्वारा कहा गया था, जो शेक्सपीयर के समकालीन थे और उनकी प्रतिभा को स्वीकार नहीं करते थे। उत्पल दत्त को यह अवश्य जानकारी होनी चाहिए कि 'अशिक्षित शेक्सपीयर' की थीसिस जानसन द्वारा उपयोग में नहीं

लायी गयी और न बाद में आलोचकों द्वारा शेक्सपीयर को पदच्युत करने के लिए उपयोग में लायी गयी, बल्कि शेक्सपीयर के अद्वितीय गुणों का वर्णन करने के लिए लायी गयी।[35] यह आलोचना क्रमिक रूप से कम होती गयी और 19 वीं शताब्दी में कम ही रह गयी और आज पश्चिम में कोई जाना-माना आलोचक नहीं है जो शेक्सपीयर को बर्बर के बतौर देखता हो।[36] धरणी के अनुसार उत्पल दत्त द्वारा किया गया यह दावा या आरोप बेबुनियाद है। उनके अनुसार,

> शेक्सपीयर ने अपने सभी नाटकों में ट्युडर के राजनीतिक चिंतन को अपनाया। उन्हें एक तरफ़ खींचना और उन्हें पूंजीवादी समाज के सबसे बड़े दुश्मन का नाम देना और कुछ नहीं है बल्कि एक रोमांटिक विलासिता है और छठे दशक की बचकानी हरकत है। उत्पल बाबू! कृपया आप यह स्वीकार

---

[35] Dharani Ghosh, *About Shakespeare,* Desh, May 4, 1991।

[36] Ibid।

कीजिए कि आप उस व्यक्ति का सम्मान करते हैं, जो आपके राजनीतिक पक्ष में नहीं है।[37]

उन्होंने अपनी बात में आगे यह भी जोड़ा कि उत्पल दत्त ने कहां और किस रूप में यह देख लिया कि शेक्सपीयर को पदच्युत करने की कोशिश की जा रही है? शेक्सपीयर के नाटकों में अभिनय करते हुए, शेक्सपीयर का अध्ययन करते हुए शेक्सपीयर की लोकप्रियता शिखर पर थी। एक प्रमाण के बतौर, कोई पश्चिमी रंगमंच और सिनेमा टेबलायडों, शोधपत्रों, विश्वविद्यालय पाठ्यक्रमोम, वार्षिक ग्रंथ सूची और आधुनिक भाषा संघ के शोधप्रबंधों के अंशों को देख सकता है। क्या कोई इन्हें शेक्सपीयर के असम्मान के रूप में देख सकता है?

दरअसल धरणी घोष ने उत्पल दत्त द्वारा शेक्सपीयर के महत्व को स्वीकार करने की कोशिशों की गंभीर आलोचना प्रस्तुत की। वे उन समकालीन दृष्टिकोणों के भी विरुद्ध थे, जिनके तहत अध्ययन चल रहे थे और उत्पल दत्त जिनका अनुमोदन कर रहे थे। धरणी घोष की आलोचना का जवाब देते हुए उत्पल दत्त ने इसे

---

[37] Ibid।

स्पष्टता से रेखांकित किया। उन्होंने एक साक्षात्कार में कहा था-मैंने संक्षेप में, इसकी चर्चा की थी कि पश्चिम के कुछ शिक्षित लोग वाल्तेयर के समय से ही शेक्सपीयर के प्रति शत्रुतापूर्ण दृष्टिकोण रखते आये हैं। एक साक्षात्कार में इससे अधिक विवेचना करना संभव नहीं है। वाल्तेयर द्वारा शेक्सपीयर को बर्बर कहे जाने संबंधी जिस बात पर धरणी घोष चिढ़ गये हैं क्या वह बता सकते हैं कि हेमलेट के लिए वाल्तेयर ने शेक्सपीयर को Drunken sage नहीं कहा था? क्या यह Drunken sage बर्बर शब्द से अधिक कठोर नहीं है? मैंने देखा है कि धरणी बाबू ने यह स्वीकार नहीं किया कि वाल्टेयर ने भी बर्बर शब्द का प्रयोग किया है। इस परिप्रेक्ष्य में, मैं यह कहने को बाध्य हुआ हूं कि *लेटर आफ़ द बुक* के 18 वें पत्र में वाल्तेयर ने पूरे अंगरेज़ी रंगमंच को बिना किसी शिष्टाचार, मर्यादा और सच्चाई के बर्बर कहा है। उन्होंने यह भी लिखा है कि शेक्सपीयर के पास एक रत्ती भी अच्छे भाव नहीं थे और न उसे नाटक का एक भी नियम पता था। इसके आगे उसने अंगरेज़ों का

भयानक मज़ाक उड़ाते हुए त्रासदी पर लिखा है कि-"त्रासदी के नाम पर राक्षसी चेहरे प्रस्तुत किये गये।"[38]

हालांकि वाल्तेयर ने यह भी कहा है कि शेक्सपीयर प्रभावशाली एवं उत्तेजक थे। इसके बावज़ूद वाल्तेयर एडीसन के नाटक *काटो* को मास्टरपीस मानते थे। हालांकि यह नाटक केवल उनके द्वारा पढ़ा जाता है जो नाटकों/रंगमंच पर शोध कार्य कर रहे हैं। उन्होंने इस सवाल पर भी बहस की कि वाल्तेयर की यह आलोचना केवल इस या उस को न्यायोचित ठहराने के लिए नहीं है, बल्कि हमें इसे अधिक व्यापक परिप्रेक्ष्य में देखने की ज़रूरत है। 1991 में, शेक्सपीयर का बचाव करना और इसी तरह वाल्टेयर के मत का बचाव करना असंगत लग सकता है। दत्त के अनुसार, धरणी घोष ने यह स्थापित करने की कोशिश की कि वस्तुतः वाल्तेयर की आलोचना पूरे यूरोप में शेक्सपीयर को लोकप्रिय बनाने में सहायक थी। दत्त इससे सहमत नहीं थे कि "यह वक्तव्य न्यायसंगत है, बल्कि उन्होंने इसे इस ऐतिहासिक बहस में शामिल

---

[38] Utpal Dutt, About Shakespeare (Letter to the Editor), *Desh*, July 7, 1991।

किया कि यह वाल्तेयर द्वारा फ़्रांसीसियों को दी गयी चेतावनी थी कि वे शेक्सपीयर में लीन होकर अंगरेज़ीदां न बन जायें।"[39]

लेकिन उत्पल दत्त के दृष्टिकोण में यह महत्वपूर्ण प्रश्न बन जाता है कि क्यों वाल्तेयर जैसी तीखी दृष्टि रखनेवाले लेखक ने यह सब लिखा। क्यों दिल को छू लेनेवाला उनके जैसा सबसे प्रेम करने वाला लेखक लगातार शेक्सपीयर के नाटकों की महानता को खारिज़ करता रहा? क्यों वे लगातार शिष्टाचार, नियमों और सत्याभासों का सवाल खड़ा करते रहे? क्यों उनके जैसा क्रांतिकारी यह समझने में अक्षम रहा कि शेक्सपीयर की निर्बाधता और उद्दंडता मानवीय जीवन का सच्चा प्रतिबिंब है। यह सवाल महत्वपूर्ण है क्योंकि वाल्तेयर बुर्जुआ जनवादी क्रांति के पहरेदार थे। क्यों वे अपनी नयी दुनिया से, जिसका सपना उन्होंने देखा था, शेक्सपीयर को खत्म करना चाहते थे? क्या शेक्सपीयर की दुनिया वाल्टेयर के सपनों की दुनिया में फ़िट नहीं बैठती थी?

कार्ल मार्क्स ने 1844 में लिखा था कि बुर्जुआ नेता धनी कंजूस हैं। मार्क्स ने यह लिलो के नाटक 'मर्चेंट आफ़ लंदन' के

---

[39] Ibid।

परिप्रेक्ष्य में लिखा था। अतः शेक्सपीयर द्वारा किया गया भावनात्मक चित्रण इस नयी पूंजीवादी दुनिया में फ़िट नहीं बैठता था। मार्क्स कहीं-न-कहीं एक रूढ़िवादी मर्यादा और नियमों के शत्रु थे। इस आधार पर दत्त ने दलील दी कि शेक्सपीयर की आलोचना का सवाल वाल्तेयर की पसंद-नापसंद का सवाल नहीं है बल्कि यह उनके वर्ग के हित में था, जिसने अनजाने में उनकी निजी पसंदीदगी-नापसंदीदगी को परे कर दिया। [40]

3.5 शेक्सपीयर के नाटकों में सामाजिक चेतना

शेक्सपीयर की समाज चेतना नामक अपने संकलन में उत्पल दत्त ने उन विचारों की आलोचना और उनसे बहस की है, जो यह मानते हैं कि शेक्सपीयर का खुद का कोई सामाजिक मत नहीं था।

---

[40] Ibid।

अनेक मुद्दे अभी हल होने बाकी हैं। शुद्ध रूप में एक सजीव नाटक प्रस्तुत करने के क्रम में उत्पल दत्त के अनुसार जो समस्याएं हैं, वे ये हैं :

क. किस तरह मिथक स्वरूप से आधुनिक विषयों को अपनाया जाये।

ख. कैसे एक विश्वसनीय थीम की ज़रूरतों के मुताबिक पृथक, प्रतिष्ठित, अभूतपूर्व अभिनय शैली अपनायी जाये, जिसके तहत दर्शक एक हद तक खुद को अनिवार्यतः पहचान बनाता है।

ग. प्रोडक्शन की रंगमंचीय शैली को सेट्स, प्रकाश और साज-सज्जा के साहसिक नकार के साथ संरक्षित रखा जाये और पूरे युद्ध का माहौल रचा जाये, जैसा कि उन्होंने अपने नाटक *वियतनाम* में किया था।

घ. कैसे एक पद्य-नाटक की रचना की जाये, जो पुराने *जात्रा* की परंपराओं को संरक्षित रखे और आधुनिक भाषा के सूक्ष्म अंतरों को भी पकड़ सके।

ङ. आधुनिक नाटकों में लोकसंस्कृति के तत्वों को कैसे समाहित किया जाये।

च. कैसे एक ही साथ नाटक को लोकप्रिय बनाया जाये और उन्नत सामाजिक चेतना से जोड़ा जाये। [41]

उनके सामने लोकसंस्कृति के तत्वों का उपयोग करते हुए एक आधुनिक शहरी मुहावरा विकसित करने का कार्यभार था।

यह महत्वहीन है कि 20वीं शताब्दी के बंगाली थिएटर के संदर्भ में उत्पल दत्त का योगदान, उनकी रचना, उनका सिद्धांत और व्यवहार-अब तक भारत की सीमाओं तक सीमित है। यह पुस्तक केवल वर्ग संरचना और वर्ग जागरूकता के आपसी संबंधों के ज़रिये बंगाली थिएटर के विकास पर ही नहीं है, बल्कि एक गहराई में उतरनेवाला सामाजिक अध्ययन है जो शहरी बंगाली मध्य वर्ग के उभरने और विकसित होने को उजागर करता है, जिसके अंतर्द्वंद्व, आकांक्षाएं और समझौते पर्याप्त रूप में मंच पर प्रतिबिंबित हुए हैं।

---

[41] Utpal Dutt quoted in Vasudha Dalmia, Poetics, Plays, and Performance: the Politics of Modern Indian Theatre, p।176।

इस अर्थ में, पुस्तक का अंतिम अध्याय 'द मिरर आफ़ क्लास-क्लास सब्जेक्टिविटी एंड पालिटिक्स इन 19ट्थ सेंचुरी बंगाल' इसका एक अभिन्न और महत्वपूर्ण भाग बन जाता है। विडंबनात्मक रूप से यह वर्ग बाद के वर्षों में 'भद्रलोक' कम्युनिस्ट के रूप में विकसित हुआ और परिणामस्वरूप गिरीश चंद्र घोष की उच्च तीक्षणतावाली नाट्यकला सामने आयी, जिसने उत्पल दत्त के सनसनीखेज एपिक थिएटर के लिए जगह तैयार की। लेखक ने दृष्टिकोण और तीखी स्पष्टता के साथ रचनात्मकता के स्तर पर अतीत और वर्तमान के बीच एक तार जोड़ा। दरअसल, पुस्तक का अंतिम वाक्य 'शासक और शासित दोनों जन्म के समय जानुस के चेहरे की तरह होते हैं, औपनिवेशिक मध्य वर्ग अपनी सांस्कृतिक स्वीकार्यता और बौद्धिक जीवन के ज़रिये वर्ग अनुभव और आकांक्षाओं के क्षण को जकड़ लेता है' हमें 'जकड़न के क्षण' के नाट्यकरण को याद करने के लिए प्रेरित करता है। कोई आश्चर्य नहीं कि उत्पल दत्त ने माइकेल मधुसूदन दत्त पर नाटक लिख कर इस बिखरे हुए औपनिवेशिक मानस पर फ़ोकस करने का निर्णय

लिया, जो 'औपनिवेशिक' भक्ति और 'उपनिवेशविरोधी' विद्रोह के बीच की अनिश्चितता में डोलते रहते थे।

इस पुस्तक के सभी अध्याय बंगाली रंगमंच और मानस के मार्क्सवादी विवेचन के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। लेकिन यदि हमसे पूछा जाये कि कौन-से दो अध्याय अन्य अध्यायों पर भारी हैं, तो मैं बिना किसी हिचक के कहूंगा, 'रीप्रेज़ेंटेशन एंड क्लास पालिटिक्स इन द थिएटर आफ़ उत्पल दत्त' एंड 'नेशन एंड क्लास इन द कम्युनिस्ट एस्थेटिक्स एंड द थिएटर आफ़ उत्पल दत्त'। लेखक ने बेहद विवेचनात्मक ढंग से उत्पल दत्त को चुना, क्योंकि दत्त एक के बाद एक नाटकों की प्रस्तुति करने के साथ ही एपिक थिएटर का विस्तृत सिद्धांत विकसित करने की कोशिश की, जिसके बारे में उत्साही नाट्यकर्मियों ने आशा की कि दूसरों के लिए एक आदर्श का काम करेगा, बांग्ला थिएटर के साम्राज्य के ऊपर उत्पल दत्त कोलोसस (भव्य मूर्ति) की तरह लंबे डग भरते हुए छा गये।

उत्पल दत्त ने बेशक 'एपिक थिएटर' की अवधारणा को बर्तोल्त ब्रेख्त से हासिल किया था, किंतु कुछ हद तक 'एपिक थिएटर' का उनका अपना मत इसके साथ-साथ खड़ा हो रहा था,

जो वास्तव में ब्रेख्त की इस अवधारणा का स्पष्टतः विरोध करता था। यही कारण था कि अपने समय में दत्त ने कभी भी ब्रेख्त के नाटकों का रूपांतरण नहीं किया। उत्पल दत्त की पुत्री विष्णुप्रिया दत्त के अनुसार ब्रेख्त का एपिक थिएटर अपने ऐतिहासिक भौतिकवाद में इतना घुला था कि उसका कोई भी रूपांतरण कहीं-न-कहीं भारत में ब्रेख्त के संदर्भ में एक गलत व्याख्या को जन्म देता।[42] यह सही समय है कि हम इस स्वाभाविक अंतर को रेखांकित करें, क्योंकि भारत में आलोचक बेहद सफ़ाई से ब्रेख्त की 'मदर करेज एंड हर चिल्ड्रेन' से उत्पल दत्त के 'बैरिकेड' के बीच एक सीधी रेखा खींच देते हैं। हिमानी बनर्जी बड़ी उत्कृष्टता के साथ इन दोनों नाट्यकारों के बीच अंतरों को चिह्नित करती हैं। उनके शब्दों में, "उत्पल दत्त का एपिक थिएटर, ब्रेख्त के 'वर्ग संघर्ष के लिए एपिक थिएटर' से अलग, प्रथमतः और सबसे अधिक एक स्पष्ट सामाजिक एजेंडे के साथ एक राष्ट्रीय रंगमंच है।"[43] जब कोई इस बुनियादी अंतर के विस्तार में जाता है, तब वह इस निष्कर्ष पर पहुंचता है।

---

[42] Based on email Interview with Bishnupriya Dutt।

[43] Himani Banerjiee, *Representation and Class Politics in the Theatre of Utpal Dutt*, Kolkata: Centre for Studies in Social Sciences, 1990, p। 13

जहां उत्पल दत्त अपनी रंगमंचीय परंपराओं और रूसी थिएटर अभिनेता व निर्देशक स्तानिस्लाव्स्की के नज़दीक थे, यह आकांक्षा रखते थे कि वे अपना एपिक थिएटर मिथकों की शक्तियों को नये सिरे से जागृत करते हुए खड़ा करें, जबकि इसके विपरीत ब्रेख्त ने इस मिथक पर ही सवाल खड़े करते हुए अपना दृष्टिकोण विकसित किया। एक अपने समृद्ध और जीवंत एपिक-मिथकीय शैली में अंटका हुआ था तो दूसरा भीतर से मिथकों को ध्वस्त करने में लीन था। उत्पल दत्त को बहुरूपी नायकों की ज़रूरत थी, ब्रेख्त एक ऐसा समाज चाहते थे, जिसको नायकों की ज़रूरत नहीं थी। ब्रेख्त के *स्क्वेयक, मदर करेज* और *गैलीलियो* में अरस्तू या एलीज़ाबेथियन जैसा कोई नायक नहीं है। वे आलोचक कुछ हद तक सही हैं जो उत्पल दत्त के एपिक-सौंदर्यशास्त्र की उत्पत्ति जोसेफ स्टालिन की प्रशंसा में देखते थे। उत्पल दत्त पर अपने अंतिम अध्याय के समापन वाक्य में हिमानी बनर्जी एक साहसिक उत्साह के साथ लिखती हैं :

> मिथकीय यथार्थवाद की उनकी योजना उनकी राष्ट्रीय बुर्जुआ समाजवाद का सौंदर्यशास्त्रीय रूपांतरण था, जिसे संक्षेप में स्तालिनिज़्म कहा जा सकता है। [44]

यह संक्षिप्त तुलना इस अपरिहार्य प्रश्न की तरफ़ ले जाती है : क्यों ब्रेख्त के एपिक थिएटर के उदाहरण (*मदर करेज* और *गैलीलियो*) क्लासिक बन गये और क्यों उत्पल दत्त के *टिनेर तलवार* और *दुशप्नेर नगरी* जैसे नाट्यालेख भी, जिन्होंने दर्शकों को मंत्रमुग्ध कर दिया था, बहुत दिनों तक पढ़े नहीं गये। उत्पल दत्त यह दावा कर सकते हैं कि उनका रंगमंच शीघ्र क्रांति के लिए आह्वान करता है और क्लासिक होने की इच्छा नहीं करता। लेकिन यहीं कोई यह प्रतिवक्तव्य रख सकता है कि ब्रेख्त उत्पल दत्त से कम राजनीतिक नहीं थे और उनके नाटक भी अडिग रूप से कम्युनिज़्म के प्रति समर्पित हैं। निस्संदेह, आलोचकों की सहानुभूति बर्तोल्त ब्रेख्त के साथ है। लेकिन उनकी निश्पक्षता यह भी सुनिश्चित करती है कि उत्पल दत्त की निर्बाध प्रतिबद्धता, जिसके वे लायक भी थे, उनकी सभी प्रस्तुतियों झलकती है। अपनी

---

[44] Ibid। 118

प्रस्तुतियों में, जिनमें से कुछ सांसें रोक देनेवाली थीं, उत्पल दत्त ने वह प्राप्त किया, जिसकी उन्होंने आकांक्षा की थी।

उत्पल दत्त के शब्दों में उनके नाटक का उद्देश्य था :

> भारत के उथल-पुथल भरे इतिहास की पुनर्स्थापना, इसकी जनता की भौतिक परंपराओं की पुनर्स्थापना, महान विद्रोहियों और शहीदों की वीर गाथाओं को फिर-फिर से स्मरण करना। [45]

लेकिन हमें अधिक शीघ्रता से उन्नत, रचनात्मक परिश्रम की ज़रूरत है, ऐसे समय में जब फ़ासीवादी-कट्टरपंथी शक्तियां अथक रूप से उस राष्ट्रीय इतिहास को फूहड़ बना रही हैं, जिसने उत्पल दत्त को प्रेरित किया। इससे भी अधिक, यह कोशिश उत्पीड़न और वर्ग, लिंग और नस्ल के नये तत्वों के बीच सूत्रों का एक जाल बुनते हुए सामाजिक न्याय के सरोकारों से भी जुड़ी रहेगी। हिमानी बनर्जी, *वन वूमेन, ट्र वूमेन, विदाउट वूमेन,* में दिखाती हैं कि कैसे

---

[45] Ibid। p। 70

वर्ग का प्रश्न स्पष्टतः नारीवादी संदर्भ से भी जुड़ा हुआ है। महान अभिनेत्री शोभा सेन के साथ उनका उत्कृष्ट संवाद इस पर जोर देता है कि कैसे अर्ध सामंती, पितृसत्तात्मक व्यवस्था में वर्ग लैंगिक है और लैंगिकता भी एक वर्ग है। [46]

अंत में हम कह सकते हैं उत्पल दत्त के द्वारा रुपांतरित शेक्सपीयर के नाटकों से संबंधित सामग्री को पढ़ कर यह धारणा बनती है। कि उत्पल दत्त जो कहते हैं, करते हैं उसमें सच्चाई और ईमानदारी होती है। यह संभव है उसमें हमें कई स्थलों पर विरोधाभास लगे, पर वह एक द्वन्द्व का प्रतिफल है। उन सबके बीच से नाटककार-निर्देशक-अभिनेता उत्पल दत्त का जो व्यक्तित्व उभरता है, वह बड़ा सशक्त , प्राणवान और वर्तमान युग की पीढ़ी के लिए एक आदर्श भी है।

---

[46] Ibid| p| 156

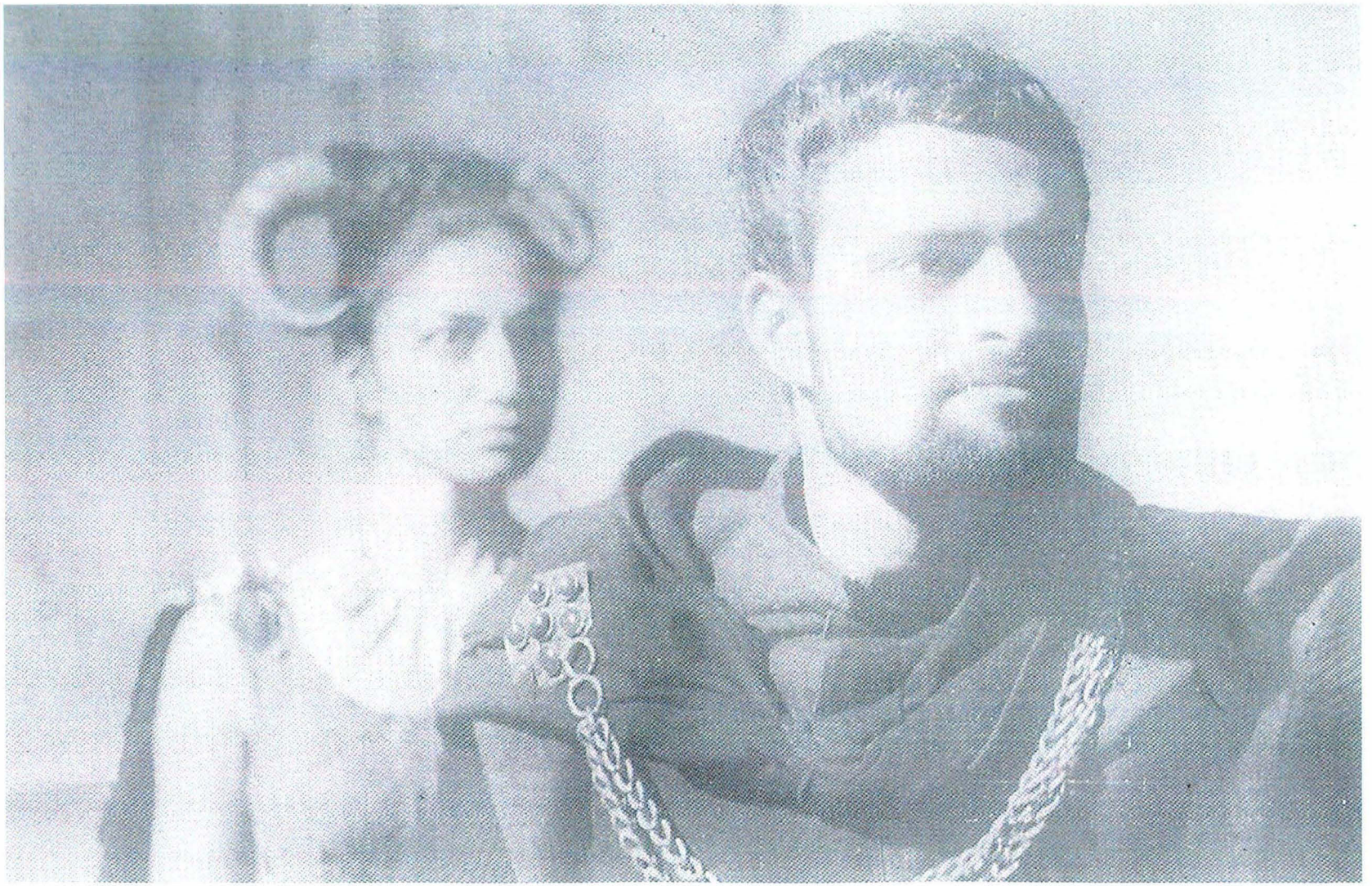

A scene from E. Alkazi's Production King Lear (1964)

A scene from E. Alkazi's Production Julius Caesar (1992).

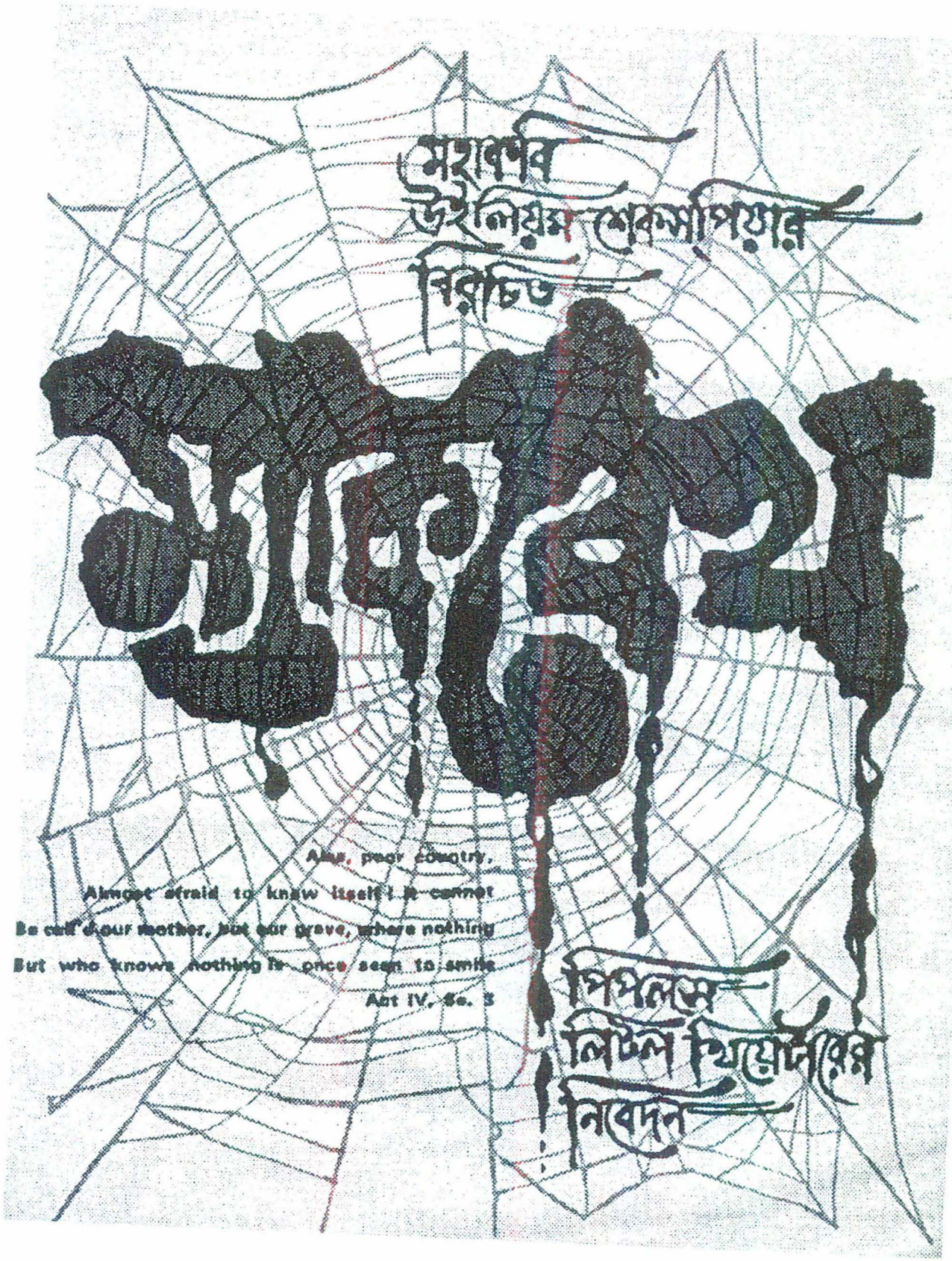
মহাকবি
উইলিয়ম শেক্সপিয়ার
বিরচিত
Alas, poor country,
Almost afraid to know itself! It cannot
Be call'd our mother, but our grave, where nothing
But who knows nothing is once seen to smile
Act IV. Sc. 3
পিপলস
লিট্‌ল থিয়েটারের
নিবেদন

Macbeth (Shakespeare) Directed by Utpal Dutt, Dec.1954.

A scene from Dutt's Production of Romio Juliet

Bishnupriya Dutt & Gautam Ghosh in Othello.

A scene from Dutt's Production of Midsummer Night's Dream (in Bengali)

अध्याय-4

इब्राहीम अल्काज़ी एवं उत्पल दत्त: शेक्सपीयर के संदर्भ में एक तुलनात्मक अध्ययन

4.1 प्रस्तावना

इस अध्याय में हम इब्राहीम अल्काज़ी एवं उत्पल दत्त द्वारा किये गये नाटकों का तुलनात्मक अध्ययन करने का प्रयास शेक्सपीयर के नाटक के संदर्भ में करेंगे| इसमें यह ज़रूरी नहीं है कि अल्काज़ी एवं उत्पल दत्त ने शेक्सपीयर को मंचित करने के लिए किसी अलग तरह के मंचीय परंपरा का सहारा लिया, बल्कि उन्होंने अपने राजनीतिक एवं सौंदर्यशास्त्रीय मूल्यों को शेक्सपीयर के नाटकों में समाहित किया| इसलिए यह कहा जा सकता है कि हमारा यह अध्ययन कुल मिला कर दो रंगमंचीय माडलों का

अध्ययन है, जहां पर शेक्सपीयर का नाटकीय मंचन एक उदाहरण भर रह जाता है| यह विदित है कि उत्पल दत्त या अल्काज़ी ने शेक्सपीयर के मंचन के लिए कोई बहुत पृथक प्रयोग नहीं किये| इस अध्याय में मैं उत्पल दत्त एवं अल्काज़ी द्वारा किये गये शेक्सपीयर के नाटकों के रूपांतरण और मंचन पर गहराई से विचार करूंगा, जो कमोबेश नव उपनिवेशवाद की राजनीति से प्रभावित है| इसमें जो एक और महत्वपूर्ण बात उभर कर आती है, वह है दोनों महान निर्देशकों द्वारा किया गया लोकतत्वों का प्रयोग| कुछ लोगों का यह भी मानना है कि शेक्सपीयर के नाटकों में अभिनेता एवं अभिनेत्री का महत्व भारतीय नाट्य परंपरा की नट आधारित परंपरा से मेल खाता है| इस संदर्भ में एक महत्वपूर्ण पहलू यह भी है कि भारतीय परंपराशील नाटकों की तरह शेक्सपीयर ने भी अपने नाटकों में अभिनय की स्वतंत्र सृजनशीलता पर बल दिया है| शेक्सपीयर के नाटकों के भारतीय परिप्रेक्ष्य में रूपांतरण के इस अध्ययन में हम यह भी पाते हैं कि शेक्सपीयर के नाटकों की रंगमंचीय व भाषायी सीमाएं किस तरह से इन दो निर्देशकों को

नये प्रयोग की तरफ़ भी ले जाती हैं, जिन्होंने बाद के दिनों में भारतीय रंगमंच पर नाट्य रूपांतरण की प्रक्रिया को मज़बूत किया|

लेकिन जो बातें अल्काज़ी एवं उत्पल दत्त के संदर्भ में सबसे ज़्यादा लागू होती है, वह है उनका राजनीतिक विकल्प, जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से उनके नाटक के सौंदर्यशास्त्र को परिभाषित करती है|

> क्रांतिकारी बुर्जुआ ने अपने उदय के समय अपना व्यापक मिथक को रचा, सभी भावी पीढ़ियों के लिए अपने अनुभवों का सामान्यीकरण करते हुए, विशिष्ट से सार्वभौम होते हुए और इसे इतिहास से जोड़ते हुए| सामंतवाद का ध्वंस शेक्सपीयर और सर्वांतीज़ के डान क्विक्जोट (भाग-एक 1605) के ऐतिहासिक नाटकों के चक्र के रूप में परिणत हुआ| बुर्जुआ लोकतंत्र और समानता शिलर के गीत "alle menschen warden bruder" (all men shal be brothers: सभी मनुष्य

भाई होंगे) के साथ बीथोवन की कोरल सिंफनी बन गयी| उन्होंने अपनी क्रांति का काव्यकरण कर दिया, वे पद्य में परिवर्तित हो गये| वे एक आम मानवीय दृष्टिकोण पर पहुंचे क्योंकि बुर्जुआ सभी क्रांतिकारी वर्गों का नेतृत्व कर रहा था और सभी प्रगतिशील मानवता के लिए अपने सिद्धांत गढ़ने में सक्षम था|[47]

-उत्पल दत्त, *क्रांतिकारी रंगमंच के बारे में*

शेक्सपीयर के नाटकों की उनकी सत्यतापूर्ण व्याख्या का मतलब अपनी दो मंज़िलों और संगीतकारों की गैलरी के साथ ग्लोब स्टेज के पुनरुत्थान से नहीं है और न एलीज़ाबेथियन परिधानों से है जिन्हे वास्तव में कलाकार पहने हुए होते थे, न उनके दिन की रोशनी में मंचन से है| यह इसे एलीज़ाबेथियन विश्व दृष्टि की ऐतिहासिक पुनर्संरचना करेगा| आज हम

[47] Utpal Dutt, *Towards a Revolutionary Theatre*, Calcutta: Seagull, 2009. P. 122.

> वेनिस को एक वाणिज्यिक शक्ति के रूप में विकसित होते देख सकते हैं, जहां पर वह दूसरे व्यापार प्रतिस्पर्धियों से ईर्ष्या कर रहा है और इसलिए वह अपने सबसे सक्षम जनरल को साइप्रस भेज कर तुर्की के जहाजी बेड़ों पर हमले की तैयारी में है, कमोबेश इसी तरह से पश्चिम एशियाई देशों में स्वेज नहर पर कब्जे के लिए प्रतिस्पर्धा है| हम देख सकते हैं कि किस तरह से हमारी घरेलू त्रासदी देश की सियासत से प्रभावित हो रही है| [48]
>
> -इब्राहीम अल्काज़ी, *नाट्य शिक्षा के बारे में*

उपरोक्त उद्धृत वक्तव्य आधुनिक रंगमंचीय परंपराओं के दो भिन्न माडलों का प्रतिनिधित्व करते हैं : एक क्रांतिकारी रंगमंच की परंपरा, जिसका प्रतिनिधित्व इप्टा, लिटिल थिएटर ग्रुप और अनेक अन्य सांगठनिक और व्यक्तिगत प्रयासों की प्रगतिशील परंपराएं कर रही थीं, दूसरी ओर एक रंगमंचीय परंपरा थी, जिसका

---

[48] Alkazi, E. (2004). The Training of the Actor, *Sangeet Natak*, Vol. 38, No.4, pp. 77-87.

प्रतिनिधित्व हाल में स्वतंत्र हुआ भारतीय राज्य कर रहा था, जो धर्मनिरपेक्ष परंपराओं की आड़ में शासक वर्ग के लिए एक संभ्रांत संस्कृति को विकसित कर रहा था, जिस परंपरा को हम भारतीय राष्ट्रीय परंपरा भी कह सकते हैं| हालांकि यहां पर राष्ट्र की संकल्पना ही विवादास्पद हो जाती है| फिर भी आजकल के अकादेमिक लेखन में इसे एकतरफ़ा तौर पर राष्ट्रीय परंपरा मान लिया गया है| इस संदर्भ में जहां उत्पल दत्त पहली परंपरा के नेतृत्वकर्ता हैं, वहीं अल्काज़ी दूसरी परंपरा के अग्रणी रंगकर्मी हैं| इस दिशा में सबसे सार्थक प्रयास इब्राहीम अल्काज़ी की अध्यक्षता में राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय द्वारा किया गया| यह संस्कृति के सभी क्षेत्रों में नेहरूवियन धर्मनिरपेक्षता की अवधारणा के विस्तार की व्यापक कोशिश थी| इसके साथ जोड़ते हुए कहा जा सकता है कि यह प्रयास संगीत नाटक अकादेमी, साहित्य अकादेमी और अन्य संस्थानों की राज्य द्वारा की जा रही स्थापना की निरंतरता में ही किया गया था|[49]

---

[49] Theatre is an Instrument for Social Change, *The Hindustan Times*, Dec12, 1991.

यह आम धारणा है कि अल्काज़ी और उत्पल दत्त दोनों रंगमंच की दो पूरी तरह भिन्न धाराओं का प्रतिनिधित्व करते थे अथवा दूसरे शब्दों में आधुनिकता और बौद्धिकता के भिन्न प्रतिमान थे| जहां अल्काज़ी एक परिष्कृत एवं संभ्रांत संस्कृति के प्रतिनिधि थे और उनकी हमेशा कोशिश रही कि संभ्रांत वर्गों में एक लोकतांत्रिक स्पेस की स्थापना की जाये| दूसरे शब्दों में, यह भी सही है कि अल्काज़ी और उत्पल दत्त कुछ समानताओं के बावज़ूद बहुत भिन्न थे| जहां अल्काज़ी अनौपनिवेशीकरण को थिएटर में इसकी पुरानी परंपरा से जोड़ कर देखते थे या कहें कि उनका विरोध सिर्फ़ ब्रिटिशरूपी क्लासिकल औपनिवेशीकरण से था| लेकिन दत्त इस दोहरे विरोधाभास से ऊपर उठना चाहते थे और नयी उभर रही बुर्जुआ राजनीति के साथ-साथ पुरानी पारंपरिक संस्कृति पर भी प्रश्न खड़े करते थे| इसलिए जहां अल्काज़ी अनौपनिवेशीकरण को राष्ट्रवाद के चश्मे से देखने का प्रयास करते थे, वहीं उत्पल दत्त ने इसे वर्गों के संगर्षों के द्वारा समझने का प्रयास किया| जैसा कि नंदी भाटिया ने लिखा है :

दत्त का ड्रामा उपनिवेशों और औपनिवेशिक ताकतों के सामान्य द्विआधारी तर्क को खारिज़ करता है, जो औपनिवेशिक ताकतों पर अंधाधुध हमलों को बढ़ावा देता है और इसी तरह यह जाति, वर्ग और धार्मिक पूर्वाग्रहों के आधार पर संगठित एक समुदाय के आंतरिक मतभेदों की जटिलता और इसकी सफलता में सहायता में असफल रहे स्थानीय नेतृत्व को दिखाता है।[50]

4.2 एपिक थिएटर और नेशनल थिएटर : अनौपनिवेशिकता के दो मॉडल

थिएटरिकलिटी के आधार पर जहां दत्त एपिक थिएटर की राजनीतिक धारणा की वकालत करते हैं; अल्काज़ी रंगमंच के पूर्णतः दूसरे पक्ष का प्रतिनिधित्व करते हैं, हाल में उभर रहे भारत के राष्ट्रीय रंगमंच की धारणा का।

[50] Meenakshi Shedde, I'd be embarrassed to do English plays, *The Times of India*, 22 March, 1988.

तासी गुप्ता लिखती हैं कि उत्पल दत्त ने अंगरेज़ीभाषी दर्शकों के बीच नाटक करने की निरर्थकता को समझा, जो हमेशा प्रोडक्शन की कलात्मकता या शेक्सपीयर को स्वीकार नहीं करते थे, बल्कि जो थिएटर देखने इसलिए आते थे कि वे साहबों के बीच दिख सकें| इसलिए शेक्सपीयर का दर्शक वर्ग कहीं-न-कहीं स्टेटस सिंबल की संस्कृति से प्रभावित था|

इस परंपरा के विरुद्ध उत्पल दत्त ने उस समय के निम्न संस्कृति की *जात्रा* परंपरा को अपनाया और अंगरेज़ी की बार्ड परंपरा को बंगाली की भाट परंपरा में स्थापित कर दिया| उनका यह प्रयास शेक्सपीयर के नाटकों को उपनिवेशीकरण से अलग कर के देखने का एक प्रथम सार्थक प्रयास साबित हुआ| अनौपनिवेशीकरण की यह कोशिश सामयिक भी लगती है| दत्त के अनुसार, हमारे समय में शेक्सपीयर के प्रति रुचि में गिरावट शेक्सपीयर को संभ्रांत वर्ग तक ही सीमित कर देने की कोशिशों के कारण आ रही थी| इसका प्रतिकार उत्पल दत्त ने शेक्सपीयर के नाटकों को जीवंत कर के किया| इसलिए प्रयोग में यह महत्वपूर्ण हो गया कि शेक्सपीयर को एलिज़ाबेथियन मूल्यों से न जोड़ कर

देश की आम जनता के मूल्यों से जोड़ा जाये| यह प्रयास सार्थक भी हुआ और आम लोगों तक भी फैला अन्यथा उस महान नाट्यकार की कृति कुछ वर्गों के हाथों में सिमट कर अंतिम सांसें गिन रही थी| उत्पल दत्त ने शेक्सपीयर को मुक्ति और आज़ादी के सार्वभौम 'व्यक्तित्व के रूप में लिया और उनके नाटकों को समाज के ऐतिहासिक वर्ग संघर्षों में स्थापित किया|

दूसरी तरफ़ अल्काज़ी द्वारा थिएटर के अनौपनिवेशिकरण की कोशिश बड़े पैमाने पर प्रयोग की दो रूपरेखाओं पर निर्भर थी, जो या तो पश्चिम के यथार्थवादी रंगमंच या फिर पारंपरिक संस्कृत रंगमंच से ,अपनाया गया था| लेकिन ये दोनों रूपरेखाएं उत्तर-उपनिवेशवाद अथवा नव-साम्राज्यवाद के मुद्दों पर काम करने और सांस्कृतिक संघर्षों और अनौपनिवेशीकरण की पूरी प्रक्रिया के दौरान समस्याएं खड़े करते हैं| अब यह प्रायः साबित हो चुका है कि वर्ग संघर्ष को बिना वर्ग उत्पीड़न का पता लगाये नहीं समझा जा सकता|

अगर मौलिक संरचना के संदर्भ में बात की जाये तो उत्पल दत्त शेक्सपीयर के नाटकों के प्रोडक्शन में मूल पाठ और शाब्दिक

अनुवादों के बजाय उनके सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में रूपांतरण को तरज़ीह देते थे| जबकि अल्काज़ी का मानना था कि शेक्सपीयर के नाटक और, उसके अर्थ अपने आप में ही सार्वभौम हैं, इसलिए यह ज़रूरी नहीं कि उसका स्थानीय संस्कृति में रूपांतरण किया जाये| जहां तक शेक्सपीयर के नाटकों की सार्वभौमिकता का सवाल है, उत्पल दत्त एवं अल्काज़ी दोनों का मानना था कि शेक्सपीयर के नाटक सार्वभौम हैं, जो देश और काल के परे अपने अर्थ की प्रासंगिकता बनाये रखते हैं| उत्पल दत्त इसे उन नाटकों के अनिवार्य अर्थ के ज़रिये समझते थे, जो किसी भी संस्कृति में व्याख्यायित किये जा सकते हों| अल्काज़ी के लिए शेक्सपीयर के नाटक सार्वभौम मूल्यों के इर्द-गिर्द बुने हुए थे और इस तरह किसी भी संस्कृति में हू-ब-हू रखे जा सकते हैं और दर्शक इन्हें इनके मूल स्वरूप में भी समझ सकते हैं| इस तरह जहां उत्पल दत्त ने इन्हें बंगाली दर्शकों के लिए इसकी सामाजिक और सांस्कृतिक विशिष्टताओं को समझते हुए रूपांतरित किया, अल्काज़ी ने इसका हिंदी अनुवाद करते समय इसे ज्यों-का-त्यों लिया|

जहां तक बंगाल में शेक्सपीयर के नाटकों के मंचन का सवाल है, देश के अन्य भागों की तुलना में बंगाल में शेक्सपीयर के नाटकों के मंचन को लेकर एक पुरानी परंपरा बनी हुई थी, जो मूलतः अंगरेज़ों द्वारा आरंभ की गयी थी| यह कह सकते हैं कि शुरू में उसका स्वरूप औपनिवेशिक था| इसीलिए शेक्सपीयर के कथ्य कलकता (अब कोलकाता) के दर्शक वर्ग के लिए आम हो चुका था| इसके कारण दत्त के पहले भी बहुत लोगों ने शेक्सपीयर के नाटकों का ज्यों-का-त्यों रूपांतरण करने का प्रयास किया| लेकिन दत्त ने अपने से पूर्ववर्तियों से बिल्कुल अलग तरह से काम किया, उन्होंने शेक्सपीयर को उनके समय की ऐतिहासिक लय के साथ एक निश्चित अवधारणात्मक रूपरेखा के भीतर रखा, साथ ही पार-सांस्कृतिक संदर्भों के साथ एक रूपरेखा की रचना भी की, जो स्वतंत्रता और विभाजन के पश्चात के बंगाल में खुद को आसानी से अभिव्यक्त कर सके|

4.3 इतिहास की भव्यता बनाम ऐतिहासिक द्वंद्वात्मकता : मंचन की राजनीति

इस हिस्से में, मैं शेक्सपीयर के नाटकों के ज़रिये मंचन की प्रविधि को देखने की कोशिश करूंगा| उदाहरण के रूप में इब्राहीम अल्काज़ी के निर्देशन में हुए वरिष्ठ पत्रकार, कवि और थिसारसकार अरविंद कुमार द्वारा अनूदित *जूलियस सीज़र* के मंचन को लिया जा सकता है| मंचन की इस प्रविधि को विकसित करने के लिए अल्काज़ी एक हद तक स्थापित परंपरा पर बिना सवाल कड़े किये हुए ही पहुंचे थे, यही कारण था कि इस प्रयास में उन्होंने साथ-ही-साथ राष्ट्रवादी सिद्धांत भी अपनाये| अप्रत्यक्ष रूप से इसका दूसरा पहलू भी है| चूंकि अल्काज़ी एक राष्ट्रीय संस्थान के साथ जुड़े हुए थे, इसलिए उनका प्रयोग भी उस संस्थागत की राजनीति से अछूता नहीं रहा|

हालांकि अल्काज़ी ने कहा था कि उनका उद्देश्य व्यवस्थित तौर पर क्षेत्रीय नाट्यरूपों जैसे कि यक्षगान, भवाई, नौटंकी, तमाशा, जात्रा को विस्तृत करना और क्षेत्रीय रूपों और संस्कृत

रंगमंच के सौंदर्यशास्त्र के बीच जीवंत संबंधों की तलाश करना था| लेकिन उनके आलोचकों का मानना है कि इस प्रयास में अल्काज़ी के नेतृत्व में राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय ने एक ऐसी विधा की खोज की जिसके द्वारा या जिसमें लोक नाटकों को समाहित कर लिया गया| समाहित करने की यह राजनीति नव-साम्राज्यवादी राज्य के एक चरित्र को भी उजागर करती है, जिसमें लोकतत्व एवं हाशिये की संस्कृति बड़ी संस्कृति की चरागाह भर बन कर रह जाती है|

चूंकि, भारतीय नाटक पश्चिमी नाटकों की तरह पेशेवर नहीं था, इसलिए अल्काज़ी ने हर संभव प्रयास किया कि थिएटर को एक पेशे के रूप में विकसित किया जाये| क्योंकि उनका मानना था:

> मंच पर अभिनय करने से और नाटक लिखने से घर नहीं चल सकता, अपने परिवार की आजीविका के लिए आपको कहीं और भी देखना होगा| सभी लेखक मोहन राकेश की तरह सफलता का दावा नहीं कर सकते, जिनके *आषाढ़ का एक दिन* का मेरे द्वारा किया गया मंचन बेहद प्रशंसनीय रहा था| वे बड़ी चीज़ों पर

आये, और अंततः वे पत्रकारिता को पूर्णकालिक नाट्य लेखन के लिए छोड़ देने में सक्षम हुए| [51]

अल्काज़ी का पहला प्रयास था कि किस तरह थिएटर को थिएटर तक पहुंचाया जाये| जैसे कि कला कभी-कभी ही गैलरियों की लड़ाई से बाहर पहुंच पाती है| क्या यह अपने अलगाव के लिए खुद भी ज़िम्मेदार नहीं है? नुक्कड़ नाटक प्रायः नारेबाज़ी में समाप्त होते हैं, बजाय इसके कि वह लोगों को खुद के बारे में सोचने को प्रेरित करे|[52]

अल्काज़ी का मानना था कि नाटक में शानदार गुणवत्ता का होना बहुत ज़रूरी है और वे कभी भी कमज़ोर गुणवत्ता के साथ नाटक करने के लिए तैयार नहीं थे| उनके अनुसार कोई केवल सर्वश्रेष्ठ सामग्री के ज़रिये ही कोई विधा सिखा सकता है| और चूंकि क्लासिक रचनाएं समय के साथ परखी जा चुकी हैं, ये हमारे अपने समाज और समय के लिए भी प्रासंगिक होंगी|

---

[51] Teaching is believing, Indian Express, 23 January, 1994.
[52] Gowri Ramnarayan, Theatre is Revelation, The Hindu, February 24, 2008.

अल्काज़ी के सेट महज़ दिलचस्प न होकर जादुई भी हुआ करते थे| जिसमें एक लगभग परिपूर्ण प्रकाश व्यवस्था के साथ-साथ और उत्कृष्ट संगीत (और संगीत संरचना) और भव्यता सीधे दर्शक को प्रभावित करती थी| लेकिन यह भव्यता ही काफी नहीं थी| मंच पर अभिनेता को अपना अपेक्षित अभिनय भी साबित करना होता था|[53] उनकी व्यापक दृष्टि और कठोर अनुशासन नाटक में एक क्रांति पैदा करता था|

दूसरी तरफ़, उत्पल दत्त और उनके ग्रुप ने शेक्सपीयर के मंच नाटकों का उपयोग सिर्फ़ कलकत्ता के शहरी इलाकों के आस-पास थिएटर, हालों में ही नहीं किया, बल्कि वे उन्हें कस्बों और बंगाल के देहातों में भी ले गये| उन्होंने हमेशा खुले मंचों का उपयोग नाटकों के मंचन के लिए किया| वे मानते थे कि एक समतल भूमि और चिकने फ़र्श पर नाटक करना संभव नहीं है, क्योंकि समाज एकरेखीय नहीं है| यह बहुआयामी है और ये आयाम रंगमंच के फ़र्श के कंट्रास्ट सहित प्रत्येक पहलू में दिखाये जाने ज़रूरी हैं| इसलिए उनके नाटकों के स्पेस में भी क्रांति की एक

---

[53] Ibid.

संकल्पना दिखाई देती है और उनका उपयोग वर्ग स्थिति और समाज में व्याप्त संघर्ष के अनुसार हो रहा है| कई बार वे आवश्यक प्रभाव पैदा करने के लिए काले कपड़ों का भी उपयोग करते थे| तब के ग्रामीण बंगाल में नाटक डाइस पर खेले जाते थे, जो सभी तरफ़ से खुला रहता था और दर्शक चारों ओर से बैठते थे| इसके और पारंपरिक मंचों के बजाय उत्पल दत्त ने अपने दर्शकों को मंच के तीन तरफ़ बैठाया| यह उनके नाटकों में भ्रम पैदा करने के लिए महत्वपूर्ण, था| उदाहरण के लिए शेक्सपीयर के नाटकों में कई संभ्रमात्मक दृश्यों का उपयोग किया है, जो केवल तभी संभव थे, जब दर्शक तीन तरफ़ बैठे हुए हों| जब भी वे कहीं से नाटक के मंचन के लिए आमंत्रण पाते, वे रंगमंच के ठीक ढंग से निर्माण पर बल देते| वे मानते थे कि मैकबेथ एक साधारण सेवक वर्ग की तरह नहीं चल सकता और न ही उसकी तरह सोच सकता है| दरअसल वे परिधानों के मामले में विशिष्ट थे और पुस्तक में लिखे गये प्रामाणिक चुस्त परिधान उपयोग में लाते थे| वे अक्सर कहते थे कि आपको मोटे पैरों की ज़रूरत है, अगर आप चरित्र को वास्तव में असली दिखाना चाहते हैं| वे अक्सर शेक्सपीयर के

नाटकों में पश्चिमी क्लासिकल संगीत का उपयोग भी करते थे| उसी तरह से उनका ध्यान नाटक की समयावधि पर भी था, उदाहरण के तौर पर पांच मिनट या एक छोटी समयावधि में किस तरह से एक पूरी कहानी सशक्त ढंग से संप्रेषित की जाये| और उनमें यह क्षमता थी कि छोटी अवधि में भी वे पूरी कहानी रख देते थे| अल्काज़ी के विपरीत, जो नाटकों के भव्य मंचन और भारी-भरकम सेटों के निर्माण में विश्वास रखते थे, दत्त ने सामान्यतः कभी नाटकों के लिए भारी-भरकम सेटों का उपयोग नहीं किया और हमेशा हल्के सेटों पर बल दिया| क्योंकि लिटिल थिएटर ग्रुप घूम-घूम कर नाटक करता था, इसलिए छोटे सेट इसकी गतिशीलता में मददगार थे|

उत्पल दत्त कथ्य के मामले में मानते थे कि शेक्सपीयर का कथ्य या उनकी कथा धारा इतनी मज़बूत थी कि आप साज-सज्जा पर अधिक काम नहीं कर सकते| अनेक चीज़ें संवाद अदायगी, वक्तृता और अभिव्यक्तियों पर निर्भर करती है| तब भी प्रभाव छोड़ने के लिए किसी को अभिनय और परिधानों की ज़रूरत पड़ती है और इस पहलू पर समझौता नहीं किया जा सकता| वे गति और

अभिनेताओं के पग-संचालन के बारे में भी संजीदा थे| उन्होंने अभिनेताओं को उन परिधानों के साथ पग संचालन में कुशलता लाने के लिए बहुत समय लगाया| उदाहरण के लिए *ओथेलो* की टेलिविज़न प्रस्तुति में समाज में व्याप्त वैषम्य और वर्ग संघर्ष को उभारने के लिए काले और सफ़ेद कपड़ों का उपयोग किया| (देखें चित्र) उत्पल दत्त यह मानते थे कि मंच पर कुछ भी अनौपचारिक नहीं होता और वे इन चीज़ों को लेकर काफी गंभीर थे| नाटकीय संरचना में हालांकि उत्पल दत्त अल्काज़ी की तरह सूक्ष्म विवरणों में नहीं गये, लेकिन हमेशा चीज़ों को उनके अंतर्संबंधों और व्यापक परिप्रेक्ष्य में रखने का प्रयास किया|

4.4 शेक्सपीयर का मंचन : अभिनय का दर्शन

अभिनय के संदर्भ में देखें तो अल्काज़ी स्तानिस्लाव्स्की के मनोवैज्ञानिक अभिनय से ज़्यादा प्रभावित दिखते थे, वहीं उत्पल दत्त ब्रेख्त के एपिक थिएटर से प्रेरित अभिनय के संवादात्मक-शैक्षणिक तरीके में विश्वास रखते थे| लेकिन उत्पल दत्त ने अपने

नाटकों के द्वारा दर्शकों का एलियनेशन के ज़रिये राजनीतिकीकरण करने का प्रयास नहीं किया| अल्काज़ी अभिनय को रचनात्मकता का एक प्रमुख आयाम समझते थे, इसलिए उनके थिएटर में नाट्यालोचना सिर्फ़ एकतरफ़ा बयान बन कर रह जाती थी और थिएटर के गहरे सार को नज़रअंदाज़ कर दिया जाता है| उनका मानना था :

> मैं उन लोगों पर संदेह करता हूं, जो थिएटर के बारे में लिखते हैं| थिएटर प्रकटन (revelation) है| यह अभिनय में से उभरी एक रचनात्मक अभिव्यक्ति है| यह पाठ, मंच, स्पेस, पात्र, अभिनेताओं के शरीर के बीच गतिशील संबंधों में से उभरता है, ये सभी अंधकार से खुद को पाने की मनुष्य प्रजाति की गति को चित्रित करते हुए तनाव से जुड़े रहते हैं,|[54]

उनका मानना था कि थिएटर की प्रक्रिया किसी चरम बिंदु को प्रतिबिंबित नहीं करती है, बल्कि उसमें एक गति है, जो काल और समय के साथ बदलती रहती है| यह बात अभिनय के संदर्भ

---

[54] Ibid.

में भी लागू होती है| जिसमें अभिनय काल, समय और अंग का अनोखा मिलन है| लेकिन इस बात के दूसरे पहलू भी हैं| जिसमें अभिनेता सिर्फ़ या अभिनेत्री सिर्फ़ गतिशील वस्तु न रह कर एक जीवंत सोच को भी वहन करते हैं| जैसे कि उनका कहना था :

> पात्र को यह पता चलता है कि वह अपने बारे में जो सोचता है, वह वह नहीं है| अभिनेता बदलावों, प्रकटन और कायांतरण की मंज़िलों के ज़रिये उसे खोज निकालता है|[55]

हालांकि अभिनय की यह पूरी प्रक्रिया स्तानिस्लाव्स्की के अभिनय से प्रभावित थी, लेकिन अल्काज़ी ने उसे नये ढंग से परिभाषित किया और उसकी नयी सीमाएं भी दीं| अभिनय में अल्काज़ी त्रि-विमीय स्पेस का उपयोग करते थे और मंच को ऊपर उठा देते थे| इसकी प्रतीकात्मक अर्थ यह हुआ कि नाटक का स्पेस या नाटक समाज के यथार्थ से ऊपर उठ कर समाज को एक नयी दिशा देता था| इसमें अभिनय की गतिशीलता समाज की गति से

---

[55] Arora, Keval (2003). Ebrahim Alkazi, *NSD Journal*, May 2003, No.7.

कहीं तेज़ हो जाती है और उससे एक कदम आगे बढ़ कर समाज का नेतृत्व संभाल लेती है| हालांकि यह पूरी तरह से एक अधिभौतिक सिद्धांत पर आधारित था, लेकिन अल्काज़ी का नाटक पूरी तरह से अधिभौतिकवादी भी नहीं था| हां, वे वास्तविक समाज के चित्रण के लिए इसका प्रतीकात्मक उपयोग करते थे| उनके रंगमंच में आयताकार इंडोर पिक्चर फ्रेम एक गति देता था| उनका मानना था कि जब तक कोई साइक्लोरोमा के सामने कैसे लाइट और स्पेस का उपयोग करना नहीं समझता है, तब तक कोई खुद को अभिनेता नहीं मान सकता| इसी तरह से जब तक कि कोई अपने मस्तिष्क, शरीर और आत्मा को हरेक प्रकार की स्थिति में डालने को तैयार नहीं होता, तब कोई कैसे दर्शकों के सामने उस सच को उजागर कर सकता है, जिसे वह खुद नहीं जानता?[56] अल्काज़ी के लिए भाषा नाटक में एक मनोवैज्ञानिक स्थिति की अभिव्यक्ति है, जो पात्र-दर-पात्र अतिशय संवेदनशीलता और मर्यादा के साथ उपयोग में लायी जाती है|

---

[56] Ibid.

नाट्य समीक्षकों ने अक्सर अल्काज़ी के प्रोडक्शनों के सुव्यवस्थित और सुनियोजित नज़रिये की प्रशंसा की है| विशेषकर अल्काज़ी सेट निर्माण, वस्त्र विन्यास और मंच सामग्री की डिज़ाइनिंग करते समय पृष्ठभूमि पर शोध के लिए ज़ोर देते थे| सेट डिजाइनिंग में अल्काज़ी विशिष्ट क्लासिकल धारा, संतुलित ध्वनि का उपयोग करते थे| उत्पल दत्त के विपरीत वे किसी अभिनेता या अभिनेत्री को केंद्रित न करके उसकी गतिशीलता को केंद्रित करना चाहते थे| और स्पेस की अवधारणा को अखंडनीय मानते थे| जबकि उत्पल दत्त में स्पेस का विभाजन समाज में विद्यमान वर्ग संघर्षों को प्रतिबिंबित करता था| इस आधार पर हम कह सकते हैं कि जहां अल्काज़ी की रंगमंचीय सज्जा एक धर्मनिरपेक्ष अखंड भारत की समरस तसवीर प्रस्तुत करता था, वहीं उत्पल दत्त की रंगमंचीय सज्जा वंचित वर्गों को केंद्र में रख कर निर्मित की जाती थी| उसी तरह से अल्काज़ी के नाटकों में प्रतिसाम्यता (सिम्मिट्री) को बहुत महत्व दिया गया है| अल्काज़ी की सेट डिज़ाइनिंग पुराने मत की थी|[57] लेकिन इसका जो भी अंश अल्काज़ी में था वह यह

[57] Arora, Keval (2003). Ebrahim Alkazi, *NSD Journal*, May 2003, No.7.

था कि उनके सेट अल्काज़ी के सौंदर्यशास्त्र में निर्णायक थे| आलोचकों की मानें तो अल्काज़ी की स्पेस की समझ उनके नाटकों में बनावटी वातावरण और यांत्रिक अभिनय क्षेत्र तक सीमित थी| यद्यपि रंगमंच के क्षेत्र में एवं मीडिया द्वारा उन्हें एक निराले जीनियस के बतौर स्थापित करने की कोशिश की जाती थी, जो दर्शक के सामने अल्काज़ी को मंच के उस्ताद के बतौर प्रस्तुत करती थी जो एक व्यापक पैमाने पर हर क्षेत्र में काम करता है|

अल्काज़ी को राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय का भार उस समय दिया गया था, जब एनएसडी (जो उस समय एशियन थिएटर इंस्टीट्यूट के नाम से भी जाना जाता था) एक संकट से गुजर रहा था और उसको बंद करने की बातें हो रही थीं| तब एन एस डी के निदेशक पद के लिए उत्पल दत्त से भी बातचीत हो रही थी और वे राजी भी हो गये थे, लेकिन बाद में उनकी नियुक्ति राजनीतिक आधार पर अंतिम समय में वापस ले ली गयी| ऐसे में अल्काज़ी ने इस चुनौती को स्वीकार किया|[58] अल्काज़ी के प्रयास से राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय अभिनय प्रशिक्षण के क्षेत्र में एक स्वायत्त एवं

[58] शंभु मित्र ने-जब भी उनसे पद का प्रस्ताव किया गया- हर बार दृढ़ता से इनकार कर दिया, क्योंकि वे दिल्ली में बसना नहीं चाहते थे.

मज़बूत संस्थान बन कर उभरा, जिसमें अल्काज़ी की व्यक्तिगत छाप बनी रही| हालांकि कई महत्वपूर्ण बदलाव भी हुए, लेकिन बुनियादी तौर पर अल्काज़ी द्वारा स्थापित परंपरा को ही आगे बढ़ाता रहा| अल्काज़ी का मानना था कि अगर यदि अभिनय सिखाया जा सकता हो, तब अभिनेता ने जो प्रशिक्षण लिया है, उसके तरीके पर सवाल उठता है| भारतीय थिएटर की वर्तमान अवस्था एक ऐसी अवस्था है, जिसमें यह केवल अपने प्राचीन परंपराओं की एक अस्पष्ट जानकारी से अवगत होती है, और अब तक यह विदेशी प्रभाव को आसानी से समावेशित नहीं करता है| दूसरे शब्दों में पहले से स्थापित प्रशिक्षण तंत्र के सिद्धांत को बनाये रखने की कोशिशें करता है|[59] इन सबके बाद, अभिनेता को काम करने का प्रशिक्षण मिलता है, जिसे थिएटर की प्रक्रिया कहा जा सकता है| ऐसे एक संस्थान के पास अतीत भी होता है, वर्तमान भी होता है और भविष्य के प्रति एक नज़रिया भी होता है| यदि ऐसा एक जीवंत संस्थान एक महत्वाकांक्षी अभिनेता की विशिष्ट मांगों को पूरा नहीं करता है तो प्रश्न यह उठता है कि यह कौन

---

[59] Ibid.

निर्णय करेगा कि एक कुशल अभिनेता को किस तरह के प्रशिक्षण की ज़रूरत है?

अल्काज़ी के दृष्टिकोण के अनुसार इससे भी अधिक, थिएटर एक जड़ संस्थान नहीं है, यह हमेशा परिवर्तनशील होता है, और इसकी सच्चाई के अनेक चेहरे होते हैं| जिसे एक समय में थिएटर में अंतिम सत्य के बतौर स्वीकृत किया जाता है, वह दूसरी स्थिति में उसके उल्लंघन के तौर पर दिख सकता है| चाहे इसकी वस्तुपरकता और अस्थिरता जो भी हो| यह बौद्धिक आज़ादी और लचीलापन थिएटर के लिए अनिवार्य है| वे यह भी मानते थे कि थिएटर केवल विचारों और प्रणालियों में निरंतर प्रयोगों और नयी प्रवृत्तियों से प्रदर्शन के ज़रिये ही जीवित रह सकता है| इसी वजह से, खुद के प्रति सच्चाई बरतते हुए थिएटर इस शब्द के सबसे सरल अर्थ में आधुनिकतावादी के अलावा और कुछ नहीं हो सकता|[60]

---

[60] Apse, L (1993) Alkazi ("I do not have denius, I have some talent"), *The Pioneer*, New Delhi, January 10.

भारतीय रंगमंच में प्रयोग की संभावना के तौर पर देखा जाये तो यह महत्वपूर्ण हो जाता है कि हमारे पास उपलब्ध संसाधन क्या हैं, जिनको हम प्रयोग में ला सकते हैं| अल्काज़ी ने भी इस समस्या का सामना किया और पाया कि आज के भारतीय अभिनेता के पास ये संसाधन हैं : क्लासिकल संस्कृत ड्रामा, क्षेत्रीय ड्रामा (परिष्कृत और लोक दोनों), और विदेशी ड्रामा साहित्य| नाट्य संपदा की इस विशाल विविधता तक पहुंच के लिए उन सबमें एक अंतर्निहित एकता का होना आवश्यक है, और हरेक प्रशिक्षण स्कूल को इस संसाधन के साथ संबंध को लेकर एक विशिष्ट नज़रिया अपनाना चाहिए| इसी वजह से वे यह मानते थे कि यह कहना काफी नहीं है कि अभिनय एक कला है, क्योंकि ऐसे बयान एक विशिष्ट कलात्मक सिद्धांत के विकास को रोक देते हैं, जिसकी ज़रूरत एक प्रशिक्षण स्कूल को होती है|[61]

अल्काज़ी के अनुसार भारत में लोक थिएटर की परंपराओं, प्राचीन परंपराओं और यथार्थवादी उपकरणों का आश्चर्यजनक

---

[61] Gargi, Balwant (1998) Alkazi was a gift to Indian theatre Prithvi brought realism to the stage, January 2, Alkazi File, Sangeet Natak Academy.

सम्मिश्रण दोनों समयांतरालों और संस्कृत परंपराओं तथा यथार्थवादी समकालीन रंगमंच के सुरुचिपूर्ण विभेदों को जोड़ते हुए एक दुर्लभ संबंध मुहैया कराता है| अल्काज़ी इस तथ्य को स्वीकार करते थे कि आधुनिक भारतीय नाट्य लेखकों ने लोक रूपों को अपना समुचित सम्मान ही नहीं दिया है, बल्कि पश्चिमी ड्रामाटिक रूपों और प्रस्तुतियों के सतही आकर्षण के लिए इन लोकतत्वों को नज़रांदाज़ भी करते रहे| अल्काजे ने खुले तौर पर घोषित किया कि, 'भारत को अपनी लोकपरंपराओं समृद्ध करने के लिए लोर्का की ज़रूरत है|'[62]

आज पश्चिम का थिएटर आश्चर्यजनक रूप से अपनी शैली की विविधता और नेचुरलिज़्म से लेकर प्रतीकवाद के सर्वाधिक गोपनीय रूपों तक के विस्तार में सिमटा हुआ है| इसलिए यह मानना तर्कसंगत है कि देशों के बीच भौतिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक अवरोधों को तोड़ने की प्रक्रिया विश्व के किसी भी राष्ट्र की कला के किसी भी क्षेत्र में उपलब्धियां वैश्विक कला को

---

[62] Raja, Minakshi.(1998). Alkazi's Homecoming. *The Courier Mumbai*, Dec 1.

योगदान बन जाती हैं और समस्त मानवता की साझी विरासत बन जाती हैं| ऐसी स्थिति में, हम भारतीय रंगमंच पर विदेशी रंगमंच के हरेक प्रकार, शैली और रूप के प्रभाव को नहीं रोक सकते|

एक अभिनेता को शुरुआत के लिए एक आधारभूत आम शिक्षा के बतौर-जो उसे भारतीय आधुनिक थिएटर में प्रभावी रूपों, शैलियों और माध्यम की उलझा देनेवाली जटिलता को समझने में सक्षम बनाती है, जिसकी ज़रूरत होती है वह अभिनय की एक उतनी स्थिर तकनीक नहीं है| शिक्षा में पहला कदम छात्र के व्यक्तित्व की एकता, उसके और वातावरण के बीच एक गतिशील संबंध को लक्षित होना चाहिए| एक भ्रमित कलाकार जैसी कोई चीज़ नहीं होती| कला विचारों और अभिव्यक्ति में स्पष्टता की अपेक्षा करती है|[63]

हालांकि यह नीरस लग सकता है, लेकिन शिक्षा का अंतिम उद्देश्य बुद्धि और भावों के बीच एक सुव्यवस्थित संतुलन की स्थापना होना चाहिए| उसी तरह से भावनाएं जीवन के वास्तविक

---

[63] Alkazi, E. (2004). The Training of the Actor, *Sangeet Natak*, Vol. 38, No.4, pp. 77-87.

और काल्पनिक दोनों अनुभवों के ज़रिये विकसित और प्रशिक्षित होनी चाहिए| थिएटर इसके लिए अनंत संभावनाएं प्रदान करता है और अभिनय अभिनेता को कला के जीवन से उपजे अनुभव से रोजमर्रा के जीवन की समस्याओं की एक अधिक सुलझी हुई समझ की ओर ले जाता है| इसलिए छात्रों का जोर तात्कालिक सौंदर्यशास्त्रीय अनुभव पर होना चाहिए| यह अनुभव जितना सच्चा होगा, शैक्षिक प्रयास उतने समृद्ध होंगे|

अल्काज़ी ने इस पर जोर देकर कहा कि अभिनेता सिर्फ़ एक शिल्पकार नहीं होता बल्कि एक रंगमंच के एक कलाकार को और उसकी संवेदनशीलता, उसके भौतिक और भावनात्मक अनुभव, उसकी अंतर्दृष्टि, उसका अंतर्बोध और कल्पनाशीलता वात्सल्यपूर्ण देखभाल की मांग भी करती है| शिक्षण की इस प्रक्रिया को उन्होंने 'प्रशिक्षण' या 'अनुशासन' का नाम नहीं दिया, क्योंकि इसका मतलब बहुत ही यांत्रिक हो जाता है, जो छात्र पर जस-का-तस थोप दिया जाता है| उन्होंने 'देखभाल' शब्द का उपयोग इस अर्थ में भी किया है, कि अभिनय के ज़रिये हरेक छात्र को इससे अभिनय का अपना निजी अर्थ तलाशने में मदद मिलती है| शिक्षकों को उन्हें

वात्सल्य के साथ सिखाना चाहिए, जैसे एक माली कोमलता से नाजुक पौधे की देख-रेख करता है, जो हालांकि अन्य सैकड़ों में से हो सकता है, लेकिन निजी देख-रेख, धैर्य और कोमलता की मांग करता है| अभिनय की प्रणाली बौद्धिक और नाट्यसंबंधी हो सकती है, हालांकि अभिनय में नाट्यसंबंधी प्रणाली प्राथमिक हो जाती है|

दूसरी तरफ़, महान रंगकर्मी उत्पल दत्त के लिए थिएटर अपने आप में ही महत्वपूर्ण था| इसलिए शेक्सपीयर के संदर्भ में उन्होंने उन रूपांतरणों को ही प्रस्तुत किया, जो मूल की आत्मा के नज़दीक थीं| हालांकि उत्पल दत्त ने इस प्रक्रिया में पहले ज्योतिरींद्रनाथ टैगोर द्वारा किये गये *जूलियस सीज़र*, सुनीलकुमार चट्टोपाध्याय द्वारा किये गये *द मर्चेंट आफ़ वेनिस*, पशुपति भट्टाचार्य के *ट्वेल्फ़थ नाइट* के अनुवाद; पहले नीरेंद्रनाथ राय द्वारा *मैकबेथ* के अनुवाद के चुने हुए दृश्य और फिर जतींद्रनाथ सेनगुप्त द्वारा किये गये *मैकबेथ* के अनुवाद; उनके अपने *ओथेलो, मिडसमर नाइट्स ड्रीम* और *रोमियो एंड जूलियट* के अनुवाद का उपयोग अपने उद्देश्य के लिए किया| दत्त का सीधे रूपांतरण में विश्वास नहीं

था| वे मानते थे कि शेक्सपीयर के नाटकों का सीधा रूपांतरण क्षेत्रीय या स्थानीय संदर्भों में नहीं किया जाना चाहिए|

> यदि एक नाटककार वास्तव में उतना महान है जितने कि शेक्सपीयर थे या ब्रेख्त थे, और यदि नाटक ठीक से प्रस्तुत किया जा रहा हो तब वस्त्र विन्यास में किसी बदलाव की या रूपांतरण की कोई ज़रूरत नहीं रह जाती, न ही ईसाई उत्सवों के स्थानीय समकक्षों को तलाशने की ज़रूरत रहती है|'[64]

4.5 रूपांतरणों की प्रक्रिया और राजनीति

शेक्सपीयर के अपने रूपांतरण में उत्पल दत्त ने बिना शेक्सपीयर के सारतत्व से समझौता किये उसे साधारण बंगाली वर्ग के लिए बोधगम्य बनाने के लिए अपना श्रेष्ठतम प्रयास किया| इसलिए रूपांतरण की पूरी प्रक्रिया को समझना अपरिहार्य हो गया

---

[64] Dutt, Utpal (1994). *Innovation and Experimentation in Theatre*. Special Issue. March 1994, pp. 18-22.

है, जिसे रूपांतरण और मंचन की राजनीति भी कहा जा सकता है|इसलिए यह समझना भी ज़रूरी हो जाता है कि उत्पल दत्त ने मंचन की ज़रूरतों के लिए कौन-सी रियायतें दीं, किस हद तक वे इसे अपने राजनीतिक सिद्धांतों में फ़िट करने में सक्षम रहे? दत्त यह भी दावा कर सकते थे कि सामाजिक चेतना का सार शेक्सपीयर में खुद ही मौजूद था, लेकिन यह उनके रूपांतरणों के द्वारा साफ़ दिखता है कि उनके वामपंथी विचार ने उन नाटकों की संरचना में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभायी| उत्पल दत्त ने हमेशा शेक्सपीयर को जनता के नाट्य लेखक के बतौर प्रस्तुत करने का लक्ष्य रखा| और न ही उन्होंने कभी अपने दर्शकों को कम करके ही आंका| वे यह भरोसा करते थे कि शेक्सपीयर जैसे महान नाटककार सार्वभौम माध्यमों के ज़रिये पराये दर्शक वर्ग से भी संवाद करने में सक्षम हैं और एक अच्छे प्रोड्युसर को वास्तविक थिएट्रिकल माध्यमों के ज़रिये सार्वभौम होने की कोशिश करनी चाहिए| इसलिए दत्त यहां पर एक निर्देशक और लेखक न होकर प्रोड्युसर के रूप में ज़्यादा दिखते हैं| दत्त शेक्सपीयर के नाटकों के पाठ और रंगमंचीय इतिहास के प्रति बहुत ही सचेत थे और

शेक्सपीयर की अपनी व्याख्या भी उन्होंने एक विद्वान और एक अभिनेता की समझ के रूप में की|

दूसरी तरफ़ अल्काज़ी ने सूक्ष्म यांत्रिकी पर अधिक जोर दिया| उदाहरण के तौर पर उनके नाटकों में भाषा एवं संवाद अदायगी की सूक्ष्मता को लिया जा सकता है| अल्काज़ी के लिए भाषा मनोवैज्ञानिक अवस्था की अभिव्यक्ति है, बेहद संवेदना और मर्यादा के साथ पात्र-दर-पात्र, स्थिति-दर-स्थिति, मंज़िल-दर-मंज़िल एक पात्र के जीवन में उपयोग में लायी जानी चाहिए|

> सांस्कृतिक धरोहर, गहराई, अनुकंपन और अर्थों के अंतस्थल को समझना होगा कि भाषा एक अपने साथ जुड़े एक मूल्य तंत्र को भी साथ लेकर आती है|[65]

जहां तक नाटक के वातावरण का संदर्भ है, उत्पल दत्त की कोशिश हमेशा रही कि उस वातावरण को अपने वातावरण के संदर्भ में मूर्त रूप दिया जाये| उदाहरण के तौर पर

---

[65] Dharwadker, Aparna B. (2005) *Theatres of Independence: Drama, Theory and Urban Performance in Indian since 1947, New Delhi*: Oxford University Press,p. 78

रोमियो एंड जूलियट में दत्त ने न सिर्फ़ भूमध्यसागरीय वातावरण को बनाये रखने की कोशिश की, बल्कि उसे बंगाल के तात्कालिक वातावरण से भी जोड़ कर प्रस्तुत किया| यह नाटक दिखाता है कि किस तरह से समाज में अच्छे तत्व हाशिये पर कर दिये गये हैं, जैसे नाटक में फ़्रेयर की असफलता शर्मनाक है| इस नाटक में आधिपत्यशाली, अहंमन्यता और माल संस्कृति हावी रहती है| दो पूंजीपति प्रतिस्पर्धी घराने हैं, मोंटागू और कैपुलेट| पारसांस्कृतिक संदर्भों में भारतीय दर्शक उनमें कल के नवाबों के व्यावसायिक कारनामे और अनेक भूमिधारी अभिजातों को- जिनके पास अपने बच्चों के लिए संपत्तियां हैं, देख सकते हैं- हर वह चीज़ देखी जा सकती है, जो 19वीं शताब्दी और बीसवीं शताब्दी के आरंभिक दौर के धनी अभिजातों के बारे में है|

चूंकि भारत के संदर्भ में धार्मिक चेतना भी महत्वपूर्ण हो जाती है| बहुत बार तो धर्म ही चेतना को निर्धारित करती है| उस समय चेतना और धर्म का संबंध ठीक उसी तरह से

था, जैसे शेक्सपीयर के युग में| उस समय भी सामाजिक चेतना और धार्मिकता आपस में गुंथी हुई थी| मध्य युग में चर्च समाज पर हावी था| इसलिए शेक्सपीयर की सामाजिक चेतना को जानने के लिए उनकी धार्मिक चेतना को समझना आवश्यक है| उत्पल दत्त ने बौद्धिक तौर पर यह प्रयास किया कि समाज के वे कौन से पक्ष थे, जिन्होंने शेक्सपीयर के नाटकों में सामाजिक चेतना का निर्माण किया| अपने इस अध्ययन के बाद उन्होंने यह पाया कि शेक्सपीयर भी अपने समय के भ्रष्ट धर्माधिकारियों के खिलाफ़ थे| इसमें उत्पल दत्त ने *रोमियो एंड जूलियट* के चरित्र फ्रेयर को आधार बना कर धर्म और चेतना के निर्माण की प्रक्रिया को समझने की कोशिश की| इस नाटक में फ्रेयर की सामाजिक-धार्मिक भूमिका महत्वपूर्ण थी| दत्त ने फ्रेयर की साधारणता को इन संदर्भों में उभारा : फ्रेयर सामाजिक रूढ़ियों से दूर भागता है, वह धर्म के संबंध को कभी कन्फ़ेस नहीं करता है, वह धनाढ्यों से भयभीत है जो अपने बच्चों के लिए सोने की

मूर्तियां बना रहे हैं| इस संदर्भ में उत्पल दत्त ने 'शेक्सपीयर के समकक्ष कोई दूसरा लेखक नहीं पाया|' [66]

जहां तक अनुवाद की तकनीक का सवाल है, दत्त पद्य के अनुवाद की सीमाओं से अवगत थे और यह पूरी तरह समझते थे कि पद्य के साथ किस हद तक प्रयोग किया जा सकता है| जैसा कि *रोमियो एंड जूलियट* के संदर्भ में उत्पल दत्त ने पाया कि इटालियन पद्य को स्थानीय भाषा में अनुवाद करने पर वह सानेट की महत्ता खत्म हो जाती है| नाटक के सांगीतिक पहलू के संदर्भ में, जो एपिक थिएटर का एक अभिन्न घटक है, उत्पल दत्त के पास अपना आर्केस्ट्रा था और वे उसको लेकर तरह-तरह के प्रयोग करते रहते थे| उनका ग्रुप अक्सर अपना संगीत खुद कंपोज़ करता था| दरअसल, एक समीक्षक ने *रोमियो एंड जूलियट* की शुरुआती अंगरेज़ी प्रस्तुति के बारे में शिकायत की कि प्रहसन बेहद लंबे थे और प्रदर्शन को अनावश्यक विस्तार देते थे| लेकिन कहा जा

[66] Gupta, Tapati (2003) 'The play's the thing': Transcreating Shakespeare for the Stage, *Epic Theatre*, April, pp-92-100.

सकता है कि उन्होंने थिएटर को एक आंदोलन के बतौर ग्रहण किया था, महज कार्रवाई की एक शारीरिक गति के बतौर नहीं बल्कि अवधारणा की बौद्धिक, भावनात्मक और मनोवैज्ञानिक गति के बतौर| एक नाटक में एक साथ कई चीज़ें चलती रहती हैं और अभिनेता और निर्देशक दोनों को नाटक के अनेक पहलुओं के अंतर्संबंधों से अवगत होना होता है ताकि इन अनेक क्षेत्रों के बीच सभी तत्व आपस में स्वतंत्र रूप से विचरण कर सकें| उत्पल दत्त ओपेरा और जात्रा दोनों को ध्यान में रखते हुए लोकप्रिय मनोरंजन के स्वरूपों के तत्वों के साथ नाटक कर रहे थे, जिसमें शेक्सपीयर के सार्वभौम तत्व और जात्रा के स्थानीय तत्वों का अद्भुत सामंजस्य था| दूसरे दृष्टिकोण से देखें तो उनके रूपांतरण नाट्य स्वरूपों के परे जाते थे और वे इसके घटकों को संवादों और मंचन के दूसरे पहलुओं में भी शामिल करने की कोशिश करते थे|

आज अनुवाद का मतलब, हमारी अकादेमिक भाषा में समग्र संस्कृति का एक प्रतिलिपि बना देना भर रह गया है, जिसका इसकी जीवंतता से दूर-दूर तक संबंध नहीं होता है| इस मामले में उत्पल दत्त का तरीका थोड़ा भिन्न था| वे रूपांतरण की प्रक्रिया में

एक भिन्न संस्कृति का परिवेश निर्मित करते थे और तब इसे देशज तरीकों के ज़रिये हावी संस्कृति को उलट कर रख देते थे, जिसके तहत वे न सिर्फ़ स्थानीय और सांयोगिक बल्कि शास्वत और ड्रामाटिक तत्वों को भी रेखांकित करते थे| दत्त अपने दर्शकों की ज़रूरतों को उसी तरह समझते थे, जैसा कि शेक्सपीयर ने समझा था और इसी प्रक्रिया में उन्होंने दर्शकों की पसंदीदगी और शेक्सपीयर की प्रासंगिकता का अन्वेषण किया|

व्यापक तौर पर अवधारणात्मक चिंतन ने दत्त को पाठ्य में प्रयोग करने से नहीं रोका| इसमें दत्त के भीतर का आलोचक और विद्वान अपनी पहचान बनाये रखता है, लेकिन ड्रामाटिस्ट की कीमत पर नहीं| अगर मानें तो यह एक तरह से दर्शकों की भावनाओं का सहानुभूतिपूर्ण सम्मान भी है| शायद इस तथ्य ने कि वे मध्य वर्ग को संबोधित कर रहे थे, जो अपनी भौतिक अवस्था के कारण मूल से अवगत नहीं हो सकता था, उन्हें नर्स की भाषा के कच्चेपन के लिए दोषमुक्त किया| वे नाटक में गंवारू भाषा के महत्व को भी समझते थे और इसका भरपूर उपयोग अपने राजनीतिक, नाटकों में करते थे| लेकिन वे जानते थे कि एक

एलिज़ाबेथियन दर्शक में कौन-सी चीज़ हास्य पैदा कर सकेगी, जो उन्नीसवीं सदी की मानसिकतावाले बंगाली दर्शक को झकझोरे पहुंचाये और उसे अपने संकुचित सोच के दायरे से बाहर निकाले|

यह उत्पल दत्त द्वारा प्रस्तुत किये गये शेक्सपीयर के नाटकों की ही विशेषता थी, जो शेक्सपीयर को सिर्फ़ शहरी मध्यवर्ग तक सीमित नहीं रखती बल्कि उसे देहात के लिए भी उपलब्ध कराती है|

हालांकि उत्पल दत्त द्वारा *जूलियस सीज़र* को आधुनिक परिधान में प्रस्तुत करना अपने आप में कोई अनूठा विचार नहीं था, उस समय तक ऐसे कई प्रयोग किये जा चुके थे| तब भी, इस मंचन में अनेक उत्कृष्ट विशेषताएं थीं| एक अत्यंत प्रभावशाली उदाहरण है कि ब्रूटस और एंटोनी के अंतिम संस्कार के समय दिये गये भाषणों को सुनाने के लिए रेडियो सेट का इस्तेमाल किया गया था| दत्त ने युद्ध के दृश्य के दौरान पृष्ठभूमि में मशीनगन द्वारा फ़ायरिंग का इस्तेमाल किया जो एक सुसंगतता लिये हुए है| यह अन्यथा संभव नहीं था|

यहां पर दत्त एक षड्यंत्रकारी के रूप में दर्शक को पहले जहां आनंदविभोर करते हैं, वहीं उसे आशंकित भी करते हैं| यहां पर हम देख सकते हैं कि अप्रत्यक्ष रूप से दत्त ने किस तरह से ब्रेख्त के **मॉडल** का अनुकरण किया, जो दर्शक वर्ग को हमेशा मनोरंजन के दौरान भी अपनी वास्तविक स्थिति से वाकिफ़ रखता है|

उत्पल दत्त द्वारा प्रस्तुत *जूलियस सीजर* नाटक में सीजर को, स्पष्टतः फ़ासिस्ट के रूप में चित्रित किया गया है| सीज़र के रूप में खुद एलिस अब्राहम थे, हैट और ओवरकोट में, एक मर्यादा के साथ व्यवहार करते हुए, जो उस भलेमानुस के लिए विदेशी था, हिटलर के शुरुआती दिनों की याद दिलाते थे| एक दक्ष अभिनय में जेफ़्री इज़ाक ने गोएब्ल और बाल्डर वन शिराक के बीच एक क्रास के बतौर एंटोनी की भूमिका निभाते हुए अनैतिकता और संवेदनशील बौद्धिक के मिश्रण को अभिनीत किया| ओक्तावियस के बतौर रणजीत चटर्जी को आगस्टस की आवक्ष प्रतिमा की तरह दिखने की बढ़त हासिल थी| यह चुभता हुआ दृश्य फ़ासिस्ट धोखेबाजी का एक छोटा, साफ़ चित्र निर्मित करता है, जिसमें माइकल जोंस ने लेपिडस के रूप में भूमिका निभायी थी|

यदि फ़ासिस्ट दृष्टिकोण सहमति पर शासन करता है, षड्यंत्रकारियों को समाजवादियों और कम्युनिस्टों के रूप में चित्रित किया गया है, तो यह कई सवाल खड़े करता है| इस प्रतिक्रियावादी सीनेटर कुलीनतंत्र का एक बेहतर समांतर उस समय देखा जाता है जब 1944 के संदर्भ में हिटलर के जनरल ही कुलीनतंत्र का निर्माण करते हैं और उसी ढांचे में रहते हुए उसी फ़ासिस्ट ढांचे का शिकार बन जाते हैं|

'रोमनों में सर्वश्रेष्ठ' ब्रूटस का चित्रण उत्पल दत्त ने विशिष्टता से किया था, खास कर उस दृश्य में, जहां षड्यंत्र छेड़ा जाता है, जहां काफ़्का के समय का यातनाग्रस्त केंद्रीय यूरोपीयन एक आदर्शवादी गंदी राजनीति की दुनिया में शीघ्र ही खत्म हो जाने से रोका जाता है| प्रताप राय ने, कैसियस की भूमिका में, अपने समय के सभी आदर्शवादी सहकर्मियों से अधिक संवेदनशीलता से धूर्त मशीनी राजनेता का उत्कृष्ट अभिनय किया, रिचर्ड ब्रूक खुशमिजाज़ थे और अंततः कास्का को उन्होंने प्रभावित किया; लेकिन निश्चित

तौर पर राज्याभिषेक के दृश्य के साथ पूरी तरह से न्याय नहीं कर पाया|[67]

|

उत्पल दत्त न सिर्फ़ ऐतिहासिक इप्टा आंदोलन से जुड़े हुए थे बल्कि उसके एक संस्थापक सदस्य भी थे| उन्होंने न सिर्फ़ शेक्सपीयर के नाटक ही किये, बल्कि शेक्सपीयर के सामाजिक दर्शन पर बांग्ला में एक किताब भी लिखी| उन्होंने शेक्सपीयर के कम से कम 16 नाटकों को प्रस्तुत करने किया| उनमें *मैकबेथ* (1954, बंगाल के गांवों सहित कोलकाता में कम से कम सौ बार प्रदर्शित), *द मर्चेंट आफ़ वेनिस* (1955), *जूलियस सीज़र* (1957), *ओथेलो* (1958), *रोमियो एंड जूलियट* और *मिडसमर नाइट्स ड्रीम* (दोनों 1964) शामिल हैं| हालांकि दत्त ने सबसे अधिक *तिमोन* को सबसे पसंद किया, और अपने नज़रिये के बावज़ूद शेक्सपीयर पर अपनी पुस्तक में आश्चर्यजनक तरीके से ईसाई व्याख्या प्रस्तुत की|

---

[67] Drama Critic (1994) Living theatre springs a surprise, *The Statesman*, Friday, Jan. 28.

निष्कर्ष में हम कह सकते हैं कि अल्काज़ी के विपरीत उत्पल दत्त ने भारतीय आधुनिकता को अलग ढंग से परिभाषित किया और इसको एक नया स्वर भी दिया है। साथ ही नुक्कड़ नाटक को या कहें कि नाटक को किस प्रकार् सामाजिक हथियार बनाया जाए, यह रचनात्मक सीख भी उन्होने ही दी है।[68] उत्पल दत्त शिशिर कुमार भादुड़ी के बाद बंगाली थिएटर के दूसरे योद्धा (stalwart) थे, जिन्होंने पारंपरिक बंगाली थिएटर को आधुनिकता प्रदान की और शंभु मित्र से अलग एक भिन्न प्रकार की संवेदनशीलता दी।[69]

उत्पल दत्त का मानना था कि तकनीक एक भिन्न वस्तु है। हरेक कलाकार अपने दर्शकों के लिए अभिव्यक्ति की अपनी तकनीक का उपयोग करता है, जिनमें से कुछ सफल हो जाती हैं और कुछ असफल भी हो जाती हैं। अभिव्यक्ति की तकनीक की सफलता और असफलता की प्रक्रिया से भी हमें प्रोडक्शन के नये नियमों को सीखना चाहिए।[70]

---

[68] उत्पाल दत्त के साथ शिल्पि की बातचीत, स्वतंत्र भारत-9/5/91.

[69] Ibid.

[70] Dutt, Utpal (1994). Innovation and Experimentation in Theatre. Special Issue. March 1994, pp. 18-22.

हमें नाटक की प्रेरणा और पहचान के बारे में अवगत होना चाहिए| सौंदर्य निश्चित तौर पर अकेली वस्तु नहीं है, जो नाटक की उत्पत्ति और विकास की ओर ले जाती है| शुरुआत में नाटक धार्मिक रीतियों का अभिन्न हिस्सा था और उस प्राचीन दौर में, भले वह यूनान में हो या भारत में हो, धर्म जन जीवन को नियंत्रित करता था| ऐसी धार्मिक प्रस्तुतियों के मंचन में यह कोई नहीं मान सकता कि नाटक का उद्देश्य सिर्फ़ मनोरंजन तक सीमित रह जाता है, बल्कि आम जनजीवन की चेतना का भी निर्माण करता है| उत्पल दत्त 'कला के लिए कला' के विचार के प्रबल विरोधी थे और उनका मत था कि अगर कला का उपयोग कला के लिए ही है, तो फिर उसे लोगों के बीच ले जाने की क्या ज़रूरत है?

हालांकि अल्काज़ी भी कला के लिए कला के सिद्धांत के विरोधी थे, लेकिन व्यवहार में वे इस सिद्धांत को सफलता से कार्यान्वित नहीं कर सके| अगर यह मान भी लिया जाये कि अल्काज़ी का नाटक कुछ वर्गों के लिए एक प्रगतिशील सामाजिक

चेतना का निर्माण कर रहा था, फिर भी यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि वे कौन-से वर्ग थे?

अध्याय-5

निष्कर्ष

भारत, कनाडा, आस्ट्रेलिया, दक्षिण अफ़्रीका, न्यूज़ीलैंड और वेस्टइंडीज़ में शेक्सपीयर अनेक पीढ़ियों के लिए सर्वाधिक लोकप्रिय नाटककार और ध्यानाकर्षण के केंद्र रहे हैं। शेक्सपीयर 'उद्योग' का प्रभाव इन देशों के शिक्षा तंत्रों, आलोचनात्मक विमर्शों और नाट्य संस्कृतियों पर इस तरह से पड़ा है कि वे अब भी उन विचारों, मूल्यों और ज्ञानमीमांसाओं को प्रभावित करती है, हालांकि ये सारे तत्व ग्रहणकर्ताओं के लिए विदेशी हैं और इसलिए इनकी सीमित प्रासंगिकता है, लेकिन

इस प्रासंगिकता की आड़ में वे साम्राज्यवाद के हितों को बरकरार रखते हैं।[71]

-हेलेन गिलबर्ट एवं जान टाम्पकिंस, *शेक्सपीयर की विरासत पर*

ज्योत्सना सिंह द्वारा इस विचार पर बल दिया गया है कि भारत में शेक्सपीयर और अंगरेज़ी सांस्कृतिक शुद्धता व श्रेष्ठता का मिथक, जो शासक वर्ग के राजनीतिक हित के लिए निर्णायक था, जीवित रखा गया। [72] उत्तर औपनिवेशिक दृष्टिकोण से लीला गांधी ने शेक्सपीयर की विरासत को 'शेक्सपीयर के साम्राज्य की अविनश्वरता' का नाम दिया है। [73] उपरोक्त उद्धृत विचार अपर्याप्त लगते हैं, जब हम शेक्सपीयर की विरासत को अल्काज़ी और उत्पल दत्त द्वारा किये गये प्रयोगों के संदर्भ में देखते हैं। कम-से-कम दत्त के काम में औपनिवेशिक विरासत के तत्वों का खंडन शेक्सपीयर की उनकी व्याख्या के ज़रिये हुआ है, जो अपनी प्रकृति

---

[71] Helen Gilbert & Joann Tompkins, Post-*colonial Drama: Theory, Practice, Politics*, London& New York: Routledge, 1996, p. 19.

[72] Jyotsna Singh quoted in Postcolonial Drama by Helen Gilbert and Joann Tompkins, London & New York: Routledge, 1996. p. 19.

[73] Leela Gandhi, Shakespeare 's Books: Contemporary Cultural Politics and the Persistence of Empire, Melbourne: University of Melbourne Press, 1993, p. 81.

में न सिर्फ़ क्रांतिकारी है बल्कि अपनी दृष्टिकोण में उपनिवेशविरोधी भी है। बहरहाल, अल्काज़ी ने भी अनौपनिवेशीकरण की प्रक्रिया में इसके उपयोग का दावा किया है, लेकिन नव औपनिवेशिक दृष्टिकोण से उनकी राजनीति काफी जटिल थी।

कुछ समस्याओं और कठिनाइयों के बावजूद, अल्काज़ी और दत्त के प्रयोगों ने स्वातंत्र्योत्तर भारत की थिएटर विधा में एक महत्वपूर्ण योगदान दिया। साथ ही उनके द्वारा रूपांतरित शेक्सपीयर के नाटक भी उतने ही महत्वपूर्ण थे। इस पूरे परिप्रेक्ष्य में उत्पल दत्त द्वारा *जूलियस सीज़र* का प्रोडक्शन और रूपांतरण शेक्सपियर के नाटकों के शाब्दिक अनुवाद के लिए जाना जाता है, उत्पल दत्त द्वारा किये गये शेक्सपियर के नाटकों के रूपांतरण की एक दूसरी परंपरा के प्रतीक हैं, जिनमें शेक्सपीयर के नाटक उन अर्थों, स्वरूपों और भाषाओं के खिलाफ़, जिनकी जड़ें औपनिवेशिक सौंदर्यशास्त्र में निहित हैं, एक स्थानीय अर्थ के साथ स्थानीय स्वरूप और भाषाएं ग्रहण कर लेते हैं।

इस लघु शोध प्रबंध में मैंने दिखाने की कोशिश की है कि कैसे दो महानतम निर्देशक, नाटककार और रंगकर्मियों द्वारा

रूपांतरण की राजनीति हमें औपनिवेशिक अर्थों के परे रूपांतरण के भिन्न माडल मुहैया कराती है। वास्तव में, इन दोनों का माडलों का उपयोग एक स्वतंत्र लेकिन नव-औपनिवेशिक देश में सौंदर्यशास्त्र के नये अर्थ प्रदान करने के लिए अनौपनिवेशीकरण की प्रक्रिया में उपयोग में लायी जा सकती है।

जहां इस लघु शोध प्रबंध की प्रस्तावना में विषय के व्यापक पहलू पर विचार-विमर्श किया गया है, वहीं इसमें मेरा दृष्टिकोण, पद्धति, अध्यायीकरण और इस विषय की व्यापक रूपरेखा भी शामिल हैं। दूसरे अध्याय में (शेक्सपीयर के विशेष संदर्भ में) इब्राहीम अल्काज़ी द्वारा किये गये रूपांतरणों और मंचन विधि के विस्तृत ब्योरे देने की कोशिश की गयी है। अल्काज़ी ने, जो आधुनिक। भारतीय राष्ट्रीय थिएटर के जनक माने जाते हैं, थिएटर और मंचन के क्षेत्र में महान प्रयोग किये। हालांकि अपने पेशेवर और नौकरशाहीवाले रवैये के लिए जाने जानेवाले अल्काज़ी ने परंपरा, आधुनिकता और पश्चिमीकरण की बहसों के साथ संघर्ष भी किया तथापि द्विआधारी विरोध के सम्मोहन में वे उभर रहे नव औपनिवेशिक भारतीय राज्य को नहीं देख सके, जिसे एक अन्य

महान रंगकर्मी उत्पल दत्त ने विस्तार से समझा और साथ-ही-साथ जिस पर सवाल भी खड़े किये।

इस शोध प्रबंध के तीसरा अध्याय उत्पल दत्त पर केन्द्रित है, जिनका मानना था कि रूपांतरण यथासंभव मूल के करीब होना चाहिए। उन्होंने कहा कि दर्शक वर्ग समाज में टापू की तरह नहीं हैं, बल्कि समाज के अभिन्न अंग हैं। वे मानते थे कि दर्शक वर्ग समाज के ज़्यादा करीब हैं। रूपांतरण की प्रक्रिया में वे क्लासिकल नाटकों के काव्य अनुवाद को ध्यान में रखते थे। इसलिए उन्होंने कहा कि केवल कवियों के पास ही वह कल्पनाशीलता और संवेदनशीलता के साथ-साथ भाषा के लिए वे अनुभूतियां हैं, जो मूल के शानदार काव्य और ड्रामा के अनुवाद में बरकरार रखी जा सकती हैं। जहां अल्काज़ी के शेक्सपीयर शहरी क्षेत्र के विशिष्ट वर्ग तक ही सीमित रहे, वहीं उत्पल दत्त ने शेक्सपीयर को आम आदमी के पास अपने समय की क्रांतिकारी राजनीति के साथ ले जाने की कोशिश की। उदाहरण के लिए, उन्होंने कहा कि *जूलियस सीज़र* जैसे एक नाटक का इसके राजनीतिक प्रभाव की वजह से बहुत अच्छी तरह से कलकत्ता (अब कोलकाता) और उसके आस-पास के

क्षेत्रों में मंचित किया जा सकना संभव है। यह संभावना दूर-दराज के क्षेत्रों के देहातों में संभव नहीं हो पायेगा।

चौथे अध्याय में अल्काज़ी और उत्पल दत्त के बीच तुलना के कुछ असामान्य आधारों के बावजूद तुलना करने की कोशिश की है। सामान्यतः अल्काज़ी एवं उत्पल दत्त को द्विआधारी विरोध में रख कर देखा गया है। लेकिन इस शोध प्रबंध में मेरी कोशिश रही है कि उनके कार्यों का अध्ययन द्विआधारी विरोध के परे भी किया जाये। क्योंकि कई बार इस तरह की तुलना उनके कार्यों की प्रकृति के कारण काफी कठिन हो जाती है और यह हमेशा इस या उस खांचे में नहीं रखी जा सकती, बल्कि उनके द्वंद्वात्मक और अति सूक्ष्म संबंधों को भी ध्यान में रखने की ज़रूरत है। इस तुलना में हम इस बिंदु पर पहुंचे हैं, जहां नव औपनिवेशिक राज्य में संस्कृति और कार्यों के विरोधाभास उभर कर सामने आ रहे हैं, जो शेक्सपीयर के प्रोडक्शनों के सपाट पहलुओं को भी नकारता है। दूसरी तरफ़ यह शेक्सपीयर के पश्चिमी सिद्धांतों पर आधारित कथ्य को भी नकारता है। वर्तमान में हमें रूपांतरों और प्रस्तुतियों की इन बहसों को अंतरसांस्कृतिक दृष्टिकोण से भी देखने की जरूरत

है, जहां संस्कृति के सार्वभौमिक पहलू को स्थानीयता में और स्थानीयता को व्यापक वैश्विकता में कार्यरत होते देखा जा सकता है। मैं उम्मीद करता हूं कि मेरा यह अध्ययन रूपांतरणों की राजनीति के साथ-साथ उत्तर-औपनिवेशिक नाटक के अधिक समावेशी पहलुओं के लिए भी कुछ नये अर्थ और अंतर्दृष्टि प्रदान करेगा। अंतिम लेकिन समान रूप से महत्वपूर्ण बात यह है कि मेरे लघु शोध प्रबंध की दृश्य सामग्री मेरे लिखित आलेख की अपेक्षा मंचनीय (performative) है। इस निरंतरता में लघु शोध प्रबंध का अंतिम भाग मेरे काम के सार-संक्षेप को मुहैया कराता है। फिर भी मैं अपने कार्य के संदर्भ में यह दावा नहीं करता कि इसमें अल्काज़ी और उत्पल दत्त के सभी प्रमुख पहलू शामिल हो गये हैं, लेकिन तब भी इसे हमारे समकालीन रंगमंच के उपेक्षित और नये क्षेत्रों की ओर पहले कदम के रूप में देखा जाना चाहिए। क्योंकि यह न केवल हमारी रंगमंचीय और सांस्कृतिक दुनिया को विश्लेषित करता है, बल्कि यह समय की जरूरतों, स्पेस और समग्र सामाजिक-राजनीतिक पहलुओं द्वारा परिभाषित भी होता है, लेकिन इसके बावज़ूद यह हमारे थिएटर और मंचन को नयी दिशा देता है।

विशेष रूप से समकालीन समय में, जब संस्कृति को एक उत्पाद बना कर देखा जा रहा है और यह समकालीन थिएटर आंदोलन को एक चरित्र भी प्रदान कर रहा है, हम देख सकते हैं कि कैसे अल्काज़ी और उत्पल दत्त के ये दो मॉडल इसको समाहित या इसका विरोध कर रहे हैं। यह अध्ययन इस रूप में भी महत्वपूर्ण है कि इसमें भारत की परम्परा, आधुनिकता, उत्तर-आधुनिकता, उत्तर-उपनिवेशवाद, जाति और लैंगिक राजनीति की नयी बहसें मौज़ूद हैं। अल्काज़ी और उत्पल दत्त के कार्य इन सभी प्रमुख बहसों में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। खास तौर पर उत्तर-औपनिवेशिक बहसों में, जहां रूपांतरणों और अनुवाद की प्रक्रिया काफी कठिन है, यह भविष्य के रूपांतरणों में सुधार के उद्देश्य से पहले के प्रयोगों से अवगत होने के लिए समान रूप महत्वपूर्ण हो गया है।

ग्रन्थानुक्रमणिका (BIBILIOGRAPHY)

A. References in English

1. (1964) Freeman (Utpal Dutt Hails British Theatre) August 8, Calcutta.
2. (1974) Politicising Theatre, *Youth Times*, Nov. 11.
3. (1976) Dutt Pillories Panders, *The Pioneer*, Dec. 11.
4. (1987) A Distinctly Different Fare. *The Sunday Statesman*, February 22.
5. (1991) E. Alkazi stages a comeback, *The Times of India*, December 13.
6. (1993) From the ecstatic belly-laugh to humane, *Economic Times*, August 22.
7. (1993) Utpal Dutt dies after heart attack, August 19, File No. 187/6.
8. (1996) Signs and portents, *The Pioneer*, December 29.
9. (1999) Taking Shakespeare to the Common Man: Interview with Shakespeare. *Epic Theatre*, March.
10. Adhikari, Shona (1996) Humour was his Forte, *The Asian Age*, August 18.
11. Alkazi, E. (2004). The Training of the Actor, *Sangeet Natak*, Vol. 38, No.4, pp. 77-87.

12.Apse, L (1993) Alkazi ("I do not have denius, I have some talent"), *The Pioneer*, New Delhi, January 10.

13. Arora, Keval (2003). Ebrahim Alkazi, *NSD Journal*, May 2003, No.7.

14.Ash; William (1997). A Dialogue on the Theatre with Utpal Dutt. Epic Theatre. March-June.

15. Bandhopadhyay, Samik () Actor who loved to play politics

16.Bandyopadhya, Samik (1993) A Man of Theatre Bids Adieu, *Business Standard*, August 22.

17. Banerjee, Utpal K. (1996) Alkazi: A frozen moment and eternity, *The Pioneer*, February 15.

18. Bharucha, R. (1993) Actor's curtain call, with no encore, *The Economic Times*, August 22.

19.Bharucha, R. (2001). *The Politics of Cultural Practice: Thinking through Theatre in the age of Globalization*, New Delhi: Oxford University Press.

20.Bharucha, R. (2001). *The Politics of Cultural Practice: Thinking through Theatre in the age of Globalization*, New Delhi: Oxford University Press.

21. Bhatt, Shirin (1975). I am a Marxist: Utpal Dutt. *The Free Press Journal*, Dec 7.

22. Bhatt, Shirin (1975). I am a Marxist: Utpal Dutt. *The Free Press Journal*, Dec 7.

23. Bhattacharya, N. and Bhattacharya, P. A Weapon of Change, File No. 187/369.

24.Bhattacharyya, N. (2007) Dutt and his Dimensions, *The Hindu*, October 10.

25.Bhowmick, Anshuman (2001) All the Stage's a Song, *TheTelegraph*, August 24.

26.Biswas, Benil (2001) *Theatre-lore*, Kerala Sangeetha Nataka Akademi.

27. Chadha, Sushma (1994) The Metropolitan (An Act of Commitment), The Hindustan Times, December 1994.

28.Chatterjee, G. (2007) In Fond Memory, *The Hindu*, August 8.

29.Chatterjee, Vidyarthy (1994) Making Rhetoric a Fine Art, *The Economic Times*, April 30.

30.Dalmia, V. (2006). *Poetics, Plays and Performances: The Politics of Modern Indian Theatre,* New Delhi: Oxford University Press.

31.Datta, Ella (2000). All The World's a Stage. *The Telegraph*, Sunday 31, December.

32. Datta, Ella (2000). All The World's a Stage. *The Telegraph*, Sunday 31, December.

33.Dharwadker, Aparna B. (2005) *Theatres of Independence: Drama, Theory and Urban Performance in Indian since 1947, New Delhi*: Oxford University Press.

34.Drama Critic (1994) Living theatre springs a surprise, *The Statesman*, Friday, Jan. 28.

35.Dutt, Utpal (1994) Epic Theatre, August 8, The Utpal Dutt Foundation for International Theatre Studies, Calcutta.

36.Dutt, Utpal (1994). Innovation and Experimentation in Theatre. Special Issue. March 1994, pp. 18-22.

37.Dutt, Utpal (1996) *Epic Theatre*, March, The Utpal Dutt Foundation for International Theatre Studies, Calcutta.

38.Dutt, Utpal (2004) The Jatra and its Relevance, Epic Theatre, July, pp-92-119, The Utpal Dutt Foundation for International Theatre Studies, Calcutta.

39.Dutt, Utpal (2009). *Towards a Revolutionary Theatre.* , Calcutta: Seagull Books.

40.Dutta, M. (1969) Guru, *Frontier*, July 5.

41. Ganguly, Ratna (1990) Theatre and Ideology (A Catch-22 situation), The Economic Times, June 24.

42.Gargi, Balwant (1998) Alkazi was a gift to Indian theatre Prithvi brought realism to the stage, January 2, Alkazi File, Sangeet Natak Academy.

43. Ghose, Sagarmoy (1963) Well Done Indeed, Young Man, May 5, Tribeni Prakashan, Calcutta.

44. Ghosh, Dharani.(1990). *Ideology as high comedy, The Statesman*, Calcutta, June 6.

45.Gilbert, Helen and Tompkins, Joanne (1996). *Postcolonial Drama: Theory, Practice, Politics,* London: Routledge.

46. Gupta, Tapati (2003) 'The play's the thing': Transcreating Shakespeare for the Stage, *Epic Theatre*, April, pp-92-100.

47.Hatch, James V. The Communist Theatre and Utpal Dutt, Calcutta India, File no 187/65.

48. Hoskote. Ranjit (1989) Conceptual confusion perhaps, *The Times of India*, January 2.

49.Iago (1964) The Calcutta Stage, *Theatre*, November 6.

50. Jaikrishan, Raja (1996), Hyphening East and West in theatre, *The Tribune*, January 28.

51.Joshi, Chand (1972) Last Month in Delhi (Utpal Dutt Plays), *Enact*, 63.

52. Kazmi, Nikhat (1998) The Ulysses of Indian Theatre, *The Times of India*, December 19.

53. Kazmi, Nikhat (1998) Theatre doyen Alkazi turns art educationist, *The Times of India*, December 17.

54. Khandekar, Renuka N.(1991) *Theatre is an Instrument for Social Change*, The Hindustan Times, Dec. 12.

55.Kott, Jan (1960). *Shakespeare: Our Contemporary, New York:Anchor Books.*

56.Kumar, Kuldeep (1987) Alkazi steals the thunder, Sunday Observer, March 23.

57. Lal, Anand (1993) The Man who dared to be Different, The Telegraph, August 22.

58. Malick, Javed (1994) Ebrahim Alkazi's 'Three Sisters' and 'The Royal Hunt of the Sun' (Playing the role of a teacher), *The Economic Times*, New Delhi, January 16,

59. Malik, Amita (1964) Last hope of Indian Professional Stage, *The Statesman*, March 19, New Delhi.

60. Manchanda, Rita (1991) 'Theatre Companies have always produced strong individuals', The Sunday Observer, December 22.

61. Mishra, Rajesh (1995) Final Analysis, *Society*, April.

62. Mullick, Swapan (1991) Angry man of the theatre, *The Statesman*, April 5, Calcutta.

63. Mullick, Swapan. (1993).*The Mind and the Heart of a Rebel.* The Statesman, August 29.

64. Nadhkarni, Dnyaneshwar (1978). Utpal-the Militant Thespian, The Economic Times, Dec 1.

65. Nirula, Smita (1994) In Search of gold, *The Pioneer*, New Delhi, January 18.

66. Paul, Rajinder (1989). Utpal Dutt: An Interview by Samik Bandyopadhyay in Contemporary Indian Theatre published by Hope Indian Publication, New Delhi.

67. Pinto, Jerry (1996) The elk in winter, *The Times of India*, November 3.

68. Prasanna (1987) Theatre Suffers from Neglect, *The Times of India*, January 1.

69. Raja, Minakshi.(1998). Alkazi's Homecoming. *The Courier Mumbai*, Dec 1.

70. Rajagopal, Ranjini (1994). Teaching is believing. The Indian Express, 23 Jan.

71.Rajagopal, Ranjini (1998) The Unbearable Lightness of Being, *The Statesman,* November 23.

72.Ramnarayan, Wri (2008) Theatre is Revelation, *The Hindu*, February 24.

73.Rohini (1981) Shakspeare and Jatra, *Economic Times*, March 8.

74. Rustom, Bharucha (1993) Actor's curtain call, with no encore, *The Economic Times*, August 22.

75. S.K.J. (1993) . They all rave about Alkazi, *The Evening News*, Wednesday Feb.17.

76.Sehgal, Sabina (1991) 'I feel a great sadness', *The Times of India*, April 8.

77.Sengupta, Tamal (1988). The Silenced Serial, *Telegraph*, February, 14.

78. Shakespeare, *Othello,* translation in Hindustani by Sajjad Zahir, NSD Archive.

79.Sharma, Ashish (1996) 'P' for passion, peasants and Punjab, *Indian Express*, January 17.

80. Sharma, Geeta (1995) Would it be Greek to Delhiites, The Telegraph, January 20.

81. Shede, Meenakshi.(1998) *I'd be embarrassed to do English Plays,* The Times of India, Mumbai, Nov. 22.

82.Singh, Alka (1992) Not all that great, *Financial Express*, Bombay, January 19.

83. Singh, Kuhu (1998) Alkazi's Album: Pictures tell story of 3 imperial durbars, *The Indian Express*, January 15.

84. Sinha, Gayatri (1991) I've had a sense of guilt about leaving, *Indian Express*, December 22.

85. Sinha, Gayatri (1998) Revealing images of an Empire, *The Hindu*, January 30.

86. Theatre & Television Associates (1989). A Tribute to Shakespeare 1989. New Delhi: Published on the behalf of Theatre and Television Associates.

87. Utpal Dutt plays for Nehru fest, *Telegraph*, File No. 187/83.

B. References in Bengali

1. Nag, Nivedita, Torun Utpal, Ganashakti, 2nd Sept 1993.
2. Dutta, Utpal, *Krusbiddho Kuba,* Epic Theatre: Journal of the Brecht Society of India, pp.1-44, 1967-68.
3. *Utpal Dutt er sakhyatkar, Byapok Oikyo,* Epic theatre: Journal of the Brecht Society of India, pp. 13-17, April 2000.
4. Mukhopadhyay, Ashok, Antarjatik Michile Bharoter Shrestho Nivedan, Aajkal, Kolkata, 31 August 1995.
5. Basu, Tirthankar, Shakespeare er Somparke, Desh, 4 May 1991.

6. Basu, Tirthankar, Shakespeare er Somparke, Desh, 6 July 1991.
7. Othello, Ananda Bajar Patrikar Sompadokiyo Nibondho, 15th July 1962.
8. Utpal Dutt's interview, *Je natoker rajneeti bhul taar sob bhul,* Desh, pp. 33-44.
9. *Srijonsheel natyargho choitalee rater swopno,* Ganashakti, 18th January 1989.
10. A good beginning, *Telegraph*, 24th January 1989.
11. Utpal Dutter Protibad.
12. *Sanjukto Gonoshilpee Sanstha.*
13. Shakespeare o' Adim Samyobad, 15th May, 1964.
14. Aami amrityu jiboner mulyobodhke mulyo dii, Ebrahim Alkazi's interview.
15. Dutt, Utpal, Piscator: Rajnoitik natyoshalar jonok.
16. jonopriyota o' utkorsher modhye kono birodh nei: Utpal Dutt, Ganashakti, 23rd Oct 1987.
17. Majumdar, Suchitra, Utpal Dutt o' 'In Search of theatre', Ajkal, 27th June 1987.
18. Kolkatai Herald Clamener Shonge Utpal dutter television Sakhyatkar.
19. Majumdar, Debashish, Utpal Dutt: Bharotiyo theatre er ononyo roop, Protidin, 29th August 1993.
20. Sob moholei shoker chaya, Ganashakti, 20th Aug 1993.

21.Pal, Tapos, *Utpal Chole Gelo*, Natyosomachar,pp. 41-42, 1993.

22.Mitra, Dilip Kumar, Bharotiyo Bhasai Utpal Dutter Natok, Shorokhyep Sarodiyo sankhya 1405, ed. Ajit Basu.

23.Raichowdhury, Soubhik, Theatre ey Sanglaper porey sorbadhik gurutto songeeter.

24.Chattopadhyay, Amitabho, *Kalloler Naam,* Ashwin-Kartik,1400: Kolkata Puroshree.

25.Mukhopadhyay, Samrat, Shilpir dayoboddhotai, Shilper swadhinotai, 15th Aug 2001.

26.Chakrawarty, Deependu, natyokar utpal Dutt: ekti asompurno Mulyayan.

27.Chattopadhyay, soumitro, Atuloniyo sampad.

28.Dutt, Suresh, Antorjatik Maaner Porichalok.

29.Chithi likhe mitiye chilen motoparthokyo: Utpal Dutt genius chilen: Basu, 1st Sept 1993.

30.Bondopadhyay, Satya, Utpal Dutt.

31.Bangla theatrer ononyo roopkar, protidin, 29th Aug 1993.

32.Gupta, Devnarayan, purbosurider uttoradhikar, 31st March 1991, Ajkal.

33.Bondopadhyay, Subhash, Bangla Natoke lok Sanskriti o' darao Pothikbor: ekti Somikhya, 8th December 1981.

34.das, Shankar, Bangla rongmocher itihashe natun baak.

35.Majumdar, suchitra, Choitali rater swopno January tei, Ajkal, 4th January 1989.

36.Jatrąteo tar ujjol uposthiti.

37.Bondopadhyay, *Chetonai Songram*, Anondo Bazar, 25th April 1993.

38.Mukhopadhyay, Bubu, Nondone B F J puroskar, Sept-Oct 1993, kolkata Puroshree.

39.Ispater taluar, dinbodoler palakar, 20th August, 1993.

40.Basu, tapati, Theatre cinemake pech kosher fele debe, 12th June 1993.

41.Ghosh, Kamal Kumar, Upekhito Not, Anondo Bazar Potrika, 22nd January 2005.

42.Theatre ey Naak golacche kendro: Utpal dutt, ajkal, 12th June 1989.

43.Utpal Smaran, Ajkal, 31st August 1994.

44.Violence in Arts er bondidoshar sesh kobe? Bortoman, 11th February 1988.

45.Sakhyatkar, by Surojit Ghosh, desh.

46.Spòsto Uccharone Dwidha chilo na, Ganashakti, 24th Aug 1993.

47.Utpal Dutt smarok sonkhya, Epic theatre, Peoples' theatre er mukhopotro, March 1994.

48.Epic theatre, Peoples' theatre er mukhopotro, March 1996.

49.Epic theatre, Peoples' theatre er mukhopotro, March-June 1997.

50.Epic theatre, Peoples' theatre er mukhopotro, January 2008.

51.Epic theatre, Peoples' theatre er mukhopotro, March 2007.

52.Epic theatre, Peoples' theatre er mukhopotro, August 2005.

53.Epic theatre, Peoples' theatre er mukhopotro, June 2006.

54.Dutt, Utpal, Shakespeare er somaj chetona, M C Sarkar & sons, Kolkata, 1373.

55.Dutt, Utpal, Shakespeare er Macbeth (in translation), Thema, Kolkata, 2006.

C. References in Hindi

1. (2004), *रंग यात्रा : राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय के चालीस वर्ष,* राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, नयी दिल्ली.
2. जार्ज थामसन (1985), *मार्क्सवाद और कविता,* चित्रलेखा प्रकाशन, इलाहाबाद
3. नेमिचंद जैन (1998), *तीसरा पाठ,* वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली
4. एस. एल. दोषी (2002), *आधुनिकता, उत्तर-आधुनिकता एवं नव-साम्राज्यशास्त्रीय सिद्धांत,* रावत पब्लिकेशन, जयपुर
5. अप्रैल-जून (2008), *रंग प्रसंग,* राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, नयी दिल्ली.
6. जनवरी-जून (2003), *रंग प्रसंग,* राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, नयी दिल्ली.
7. जनवरी-जून (1998), *रंग प्रसंग,* राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, नयी दिल्ली.
8. जनवरी-जून (2005), *रंग प्रसंग,* राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, नयी दिल्ली.
9. रंगकर्मी इब्राहीम अल्काज़ी सम्मानित, हरिभूमि, रोहतक, 17. 04. 2000
10. थिएटर मुगल अल्काज़ी की वापसी, संडे मेल, 12-18.01.1992

11. उत्पल दत्त और प्रतिबद्धता का नाटक, दिनमान, 25.05.could not find.
12. मीडिया ने लोगों की पसंद बिगाड़ी:अल्काज़ी, नवभारत टाइम्स, नयी दिल्ली, 15.03.2001
13. अल्काज़ी के संपर्क में आने से थिएटर के प्रति आयी गंभीरता : विजय मेहता, जनसत्ता, 24.04.2007
14. मुक्ताकाश नाटक अब असंभव हैं, द संडे आब्ज़र्वर, दिल्ली, 05.01.1992
15. एक शख्सियत का पुनरोदय, राष्ट्रीय सहारा, 12.01.1992
16. मेरे लिए हेमलेट और अर्जुन में कोई फ़र्क नहीं है : उत्पल दत्त, स्वतंत्र भारत, 09.05.1991
17. भारतीय रंगमंच पर पूरी दुनिया, हिंदुस्तान, 13.04.2003
18. चौदह साल बाद अल्काज़ी की वापसी, नवभारत टाइम्स, 28.01.1991
19. अल्काज़ी, दिनमान, 10-16.10.1982
20. अल्काज़ी से अल्काज़ी तक, *धर्मयुग,* 17.05.1987
21. वापसी का बोझ, *जनसत्ता,* नयी दिल्ली, 15.01.1992
22. कलाकार दर्शकों के सामने अभिनय करके पैदा होता है, *वीर अर्जुन,* 08.01.1992
23. अल्काज़ी का जादू कायम, *हिंदुस्तान,* 22.01.96
24. चौदह साल बाद, *राष्ट्रीय सहारा,* 12.01.1992
25. अल्काज़ी की वापसी का अर्थ,. *हिंदुस्तान,* नयी दिल्ली, 02.02.1994

26. अब भीतर की ओर मुड़े हैं अल्काज़ी, *नवभारत टाइम्स,* नयी दिल्ली, 19.01.1992

27. अल्काज़ी के साथ राजनीति की गयी है, *दैनिक जागरण,* 20.01.1992

28. इतिहास नहीं बना पाये, *राष्ट्रीय सहारा,* नयी दिल्ली, अल्काज़ी फ़ाइल-संगीत नाटक अकादेमी.

29. प्रतिभा अग्रवाल, *उत्पल दत्त,* फ़ाइल नं-187/384-390, नाट्य शोध संस्थान.

30. शेक्सपीयर, *किंग लियर,* अनु. ए एस मजनून गोरखपुरी, राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, नयी दिल्ली.

31. शेक्सपीयर, *ओथेलो,* अनु. सज्जाद ज़हीर, राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, नयी दिल्ली.

32. शेक्सपीयर, *जूलियस सीज़र,* अनु. अरविंद कुमार, राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, नयी दिल्ली.

33. *नुक्कड़ जनम संवाद,* जन नाट्य मंच, नयी दिल्ली.

D. INTERVIEWS/ साक्षात्कार

1. सौमिक बंद्योपाध्याय
2. अमाल अल्लाना
3. शोभा सेन

4. डॉ विष्णु प्रिया दत्त
5. ताप्ती गुप्ता
6. नादिरा ज़हीर बब्बर
7. उत्पल दत्त के कुछ शिष्य

परिशिष्ट - १

EBRAHIM ALKAZI

PLAYS DIRECTED (Acted in some of them)

At RADA: *Hamlet* (1948), *Richard III* (1950); **For Theatre Group** Ibsen's *Ghosts* (acts as Oswald); *The Heiress*; Chekov's *The Proposal,* Shakespeare's *Twelth Night, Othello*; Marguerite Duras' *Crime Passionelle* (1950 -1954); **For Theatre Unit:** Lorca's *The House of Bernarda Abba,* Sophecles' *Oedipus Rex* 1955 (EA Oedipus); T.S. Eliott's *Murder in the Cathedral* 1955; Moliere's *The Physician Inspite of Himself* **1955** / Bernard Shaw's *Arms and the Man* 1956; Strinberg's *The Father* 1956; Moliere's *That Scoundrel Scapin*; Moliere's *The Miser* 1957;' Arthur Miller's *A View from the Bridge* **1956** / Strinberg's *Miss Julie* (EA Jean); Anouih's *Orpheus and Eurydice*; Anouih's *Antigone* **1957** / Ben Johnson's *Volpone*; Christopher Fry's *A Phonix Too Frequent*; Shakespeare's *Maebeth* (EA Macbeth); Bernard Shaw's *Joan of Arc*; Chekov's *The Wedding*; Chekov's *The Proposal*; Ibsens's *Hedda Gabler*; Moliere's *Tartuffe* (EA Tartuffe); Tennesse Williams' *Suddenly Last Summer*; Samuel Beckett's *Waiting for Godot* (EA Lucky); Lorca's *Yerma*; Euripides *Medea* (1960-61); Moliere's *Bicchu* (in Hindi) **At N.S.D. with students and Repertory** Mohan Rakesh's *Aashadh Ka Ek Din*(1962-63); Ibsen's *Gudiya Ghar* (1962-63); Anouih's *Antigone* (1962-63); Moliere's *Bicchu* (1962-63); Dharamvir Bharti's *Andha Yug* (1963-64); Kalidas' *Abhijnana Sakuntalam* (1963-64); Sophecles' *Oedipus Rex* (1963-64); *Sapne* (1963-64); Strinberg's *The Father* (1964); Shakespeare's *King Lear* (1964); Moliere's *The Miser* (Kanjoos) (1965); Euripedes' *The Trojan Women* (1966-67); Ibsen's *Ghosts* (Pret) (1966-67); Samuel Beckett's *Waiting for Godot* (1967); Girish Karnad *Tughlaq* (1967); Anouih's *Antigone* (1967); Chekov's *Three Sisters* (1967); Priandello's *Six Characters in Search of an Author* (1968); Lorca's *Yerma* (1968) (with students of part time Acting course); Shakespeare's *Othello* (1969-70); Badal Sircar's *Hiroshima* (Teeswin Shatabdi) (1969-70); Laxmi Narayan Lal's *Suryamukh* (1972); Balwant Gargi's *Sultan Razia* (1972); Buchner's *Danton's Death* (1973); Girish Kamad's *Tughlaq* (at Purana Quila) (1974); Dharamvir Bharati's *Andha Yug* (at Purana Quila) (1974); Balwant Gargi's *Sultan Razia* (at Purana Quila) (1974); Edward Bond's *Narrow Road to the Deep North* (1974) ? ; Shudrak's *Mirchakatikam* (1974); John Osbome's *Look Back in Anger* (1974); Jean Paul Sartre's *Men Without Shadows* (Andhere Mein) (1975); Buchner's *Danton's Death* (1976); Moliere's *Biwiyon Ka Madrasa* (School for Wives) (1976); *Jaag Utah Hai Raigad* (1977); **For N.S.D. Repertory after 1977:** Girish Kamad's *Rakta Kalyan*; Lorca's *Din Ke Andhere* (The House of the Bemada Alba); Shakespeare's *Julius Caesar* (1990). **For Living Theatre:** Mahesh Elkunchwar's "Viraasat" Part I, II, III (1992); Chekov's "Three Sisters" (1994); Tennesse Williams' "A Streetcar named Desire" (1994); *Peter* Shaffer's "The Royal Hunt of the Sun" (1994); Three Greek Tragedies-

"Iphegenia in Aulis", "Agamemon" "Electra" (1995); Arthur Miller's "Death of a Salesman" (1996); Eugene O'eill's "Desire Under the Elms" (in Pubjabi as Balde Tibbe) (1996) **Fine Arts:** Complied a series of 13 Art Exhibitory entitled *This is Modern Art* at jehangir art gallery, Bombay (1954); Continued mounting exhibitions of contemporary artists like M.F. Hussain (1958-61); founded his own Art Gallery along with his wife Roshan Alkazi (1977), editor- publisher, *Art Heritage Journal.*

Awarded Honors

1947 British Drama League's Starred Certificate for Work of Exceptional Merit
1950 B.B.C. Award for Broadcasting
1962 Sangeet Natak Akademi Award
1966 Padamshree Award
1967 Fellow Sangeet Natak Akademi
1986-87 Kalidas Samman
1990 Padam Bhushan Award
1999-2000 Lifetime Achivement Award from Time and Talents Mumbai
Reliance Award form Lifetime Achivement, Mumbai
Chamanlal Bajaj Award for Contribution to Theatre, New Delhi

Keval Arora is a theatre critic and director. He teaches at the Kirori Mal College University of Delhi.

परिशिष्ट -२

I
Plays

Written and/or directed by Utpal Dutt
(Plays for which playwrights are not mentioned in brackets are by Utpal Dutt.)

In English (1947-52) for Amateur Shakespeareans, founded Dec. 1947, renamed Little Theatre Group Feb. 1949.

Richard III (Shakespeare); 1947
Othello (Shakespeare)
A Midsummer Night's Dream (Shakespeare)
Romeo and Juliet (Shakespeare)
Twelfth Night (Shakespeare)
Distinguished Gathering (James Parish)
Waiting for Lefty (Odets)
Androcles and the Lion (Shaw)
Merry Wives of Windsor (Shakespeare)
Macbeth (Shakespeare)
Dark Lady of the Sonnets (Shaw)
How She Lied to Her Husband (Shaw)
Till the Day I Die (Odets)
Arms and the Man (Shaw)
Mrs Warren's Profession (Shaw)
Othello (Shakespeare); April 1964; Minerva.

In Bengali for Little Theatre Group

Ghosts (Ibsen); 26 Nov. 1950, New Empire.
A Doll's House (Ibsen); 14 Sept. 1951; Srirangam.
Sangbadik (Konstantin Simonov); Dec. 1952.
Putuler Sansar (Ibsen); 7 March 1953; St. Thomas' Hall.
The Merchant of Venice (Shakespeare); April 1953.
Achalayatan (Tagore); July 1953.
Kerani (Sunil Chattopadhyay); July 1953.
Macbeth (Shakespeare); Dec. 1954, New Empire.
Kaler Jatra (Tagore); May 1955; Youth Festival, Ranji Stadium.
Bicharer Bani (Galsworthy); August 1955.
Budo Shalikher Ghadey Ron (Michael Madhusudan Dutt); March 1956.
Naba Sanskaran (Banaphul); March 1956.
Gurubakya (Tagore); March 1956.
Sukshma Bichar (Tagore); March 1956.
Twelfth Night (Shakespeare); April 1956.
May Dibas (Gorky); Dec. 1956.
Julius Caesar (Shakespeare); Feb. 1957.
Sirajuddowlah (Girishchandra Ghosh); April 1957.
Tapati (Tagore); May 1957.
Nicher Mahal (Gorky); 17 July 1957, Rangmahal.
Othello (Shakespeare); 8 Dec. 1958, Biswarupa.
Chhayanat; 10 Dec. 1958; Biswarupa; dir. Tarun Mitra.
Angar; 31 Dec. 1959; Minerva.
Ferari Fouj 28 May 1961; Minerva.
VIP (Kaufman and Hart); 1962; Minerva.
Titas Ekti Nadir Naam (from novel by Adwaita Mallabarman); 10 March 1963; Minerva.
Romeo and Juliet (Shakespeare); 24 April 1964; Minerva.
A Midsummer Night's Dream (Shakespeare); 24 April 1964; Minerva.
Julius Caesar (Shakespeare); April 1964; Minerva.
Kallol; 29 March 1965; Minerva
Professor Mamlock (Wolf); 18 April 1965.
Ajeya Vietnam; 31 Aug. 1966; Minerva.
Teer; 16 Dec. 1967; Minerva.
Menusher Adhikarey; 14 July 1968; Minerva.

Jatra: for Vivek Natya Samaj

Rifle, 31 Dec. 1969.
Shon-rey Malik; 1970.

In Bengali for People's Little Theatre.

Tiner Talwar; 12 Aug. 1971; Rabindra Sadan.
Surya Shikar; 13 Aug. 1971; Rabindra Sadan.
Thikana; August 1971; Academy of Fine Arts.
Barricade; 25 Dec. 1972; Kala Mandir.
Tota; 10 Feb. 1973; AIFACS, Delhi.
Duswapner Nagari; 16 May 1974; Kala Mandir.
Lenin Kothay; 26 Feb. 1976.
Ebar Rajar Pala; 6 Jan. 1977; Kala Mandir.
Titumir; 26 January 1978; Rabindra Sadan.
Stalin 34; 17 Nov. 1979; Academy of Fine Arts.
Asamapta Sanglap (Chekhov); 10 Sept. 1980; Gorky Sadan.
Danrao Pathikbar; 4 Dec. 1980; University Institute Hall.
Pandaber Ajnatabas (Girishchandra Ghosh); 6 Nov. 1982, University Institute Hall.
Malopadar Ma; 13 Oct. 1983; Academy of Fine Arts.
Ajker Shajahan; 21 April, 1984; University Institute Hall
Agnishajya; 27 Dec. 1988; University Institute Hall.
Neel Shada Lal; 13 April 1989; Rabindra Sadan.
Dainik Bazar Patrika; 11 Feb. 1989; Academy of Fine Arts.

For West Bengal Natya Akademi

Chaitali Rater Swapna (Shakespeare); 15 Jan. 1989; Rabindra Sadan.

Poster plays

Passport; 1951.
Voter Bhet (Panu Pal); 1952.
Special Train; 1961.
Naya Tughlaq; 1961.
Janatar Kallol; 1965.
Samajtantrik Chal; 1965
Louhamanab; 1965.
Mrityur Ateet; 1966.
Din Badaler Pala; 1967.
Moyna Tadanta; 18 Sept. 1968.
Din Badaler Dwitiya Pala; April 1976.
Chakranta; 23 June 1979; Baker Hall.
Kalo Hat; 25 Nov. 1979.
Petrol Bome; 1982.
Malopadar Ma; 13 Oct. 1983; Academy of Fine Arts.
Kacher Ghar; 1985.
Mumurshu Nagari; 1985.

For professional Jatra companies

Rifle; 23 Sept. 1968; New Arya Opera.
Jalianwala Bag; 1969; Satyambar Opera.
Delhi Chalo; 1970; Lokenatya.
Samudra Shasan; 1970; Lokenatya.
Neel Rakta; 1970; Bharati Opera.
Jai Bangla; 1971; Lokenarya.
Sannyasir Tarabari; 1972; Lokenatya.
Jhad; 1973; Lokenatya.
Mao Tse Tung; 1974; Tarun Opera.
Baishakhi Megh; 1974; Lokenatya.
Seemanta; 1975; Loknatya.
Turuper Tash; 1976; Lokenatya.
Mukti Deeksha; 1977; Lokenatya
Aranyer Ghum Bhangchhey; 1978; Ganabani
Shada Poshak; 1979; Ganabani.
Kuthar; 1980; Ganabani.
Swadhinatar Phanki; 1981; Bharati Opera.
Bibighar; 1982; Nabaranjan Opera.
Damama Oi Baje; 1988; Arya Opera.

For IPTA

Macbeth, Act I (Shakespeare); 23 April 1951; Srirangam.
Bisarjan (Tagore); 1951.

II
Bibliography

Publications on Utpal Dutt

The Drama Review, T 50, Spring 1971.

Enact, 68-69 Aug.-Sept. 1972, special issue devoted to Utpal Dutt.

Rangvarta, 39-41, March-May 1989; special issue devoted to Utpal Dutt.

Rustam Bharucha, 'The Revolutionary Theatre of Utpal Dutt', in *Rehearsals of Revolution: The Political Theatre of Bengal*; Seagull Boks, Calcutta; 1983.

Samik Bandyopadhyay, 'Introduction' in *Utpal Dutt, The Great Rebellion*; Seagull Books, Calcutta; 1986.

Books by Utpal Dut

Chayer Dhoan; Calcutta 1964.
Shakespearer Samajchetana; Calcutta 1972.
Stanislavskir Path; Calcutta 1975.
Chinjatri; Calcuta 1979.
Towards a Revolutionary Theatre; Calcutta 1982.
Stanislavski Thekey Brecht; Calcutta 1982.
Girish-Manas; Calcutta 1984.
Japen-da Japen Ja; Calcutta 1984.
What is to be Done?; Delhi 1988.

Plays

In Bengali, a series of his selected plays in volumes remains incomplete, with six volumes published so far. The only play in English translation in print is *The Great Rebellion* (Seagull Books, Calcutta 1986). *Invincible Vietnam* was published by the LTG in English and copies may be available. His translation of *Surya Shikar* as *Hunting the Sun* was published in the special issue of *Enact*.